समता मंच, रायपुर

माह सन्

बालक वर्ग दैनंदिन चार्ट

	१	२	३	४	५	६	७
१. प्रातः सूर्य उदय होने से पहले उठा ?							
२. उठकर ध्यान एवं वंदन किया ?							
३. बड़ों को प्रणाम जयजिनेन्द्र किया ?							
४. दतौन, शौच किया ?							
५. संत महासतियों के दर्शन किये ?							
६. बड़ों की आज्ञापालन की ?							
७. नवकारसी आदि प्रत्याख्यान किया ?							
८. धार्मिक स्कूल गये व अध्ययन किया ?							
९. शाला गये व घर पर अध्ययन किया ?							
१०. गाली दी व लड़ाई झगड़ा किया ?							
११. पैसों से खेला ?							
१२. नशीली वस्तुओं का सेवन किया ?							
१३. किसी प्राणी को सताया ?							
१४. रात्रि भोजन किया ?							
१५. सोते समय ध्यान आदि किया ?							
१६. समयचक्र का बराबर पालन हुआ ?							
१७. सामायिक संख्या							
१८. हस्ताक्षर बालक के							

श्री नानेश निरूपम सूर्य संपदा ट्रस्ट

का द्वितीय पुष्प

णाणस्स सव्वस्स पगासणाए

पर्यूषण समता संदेश
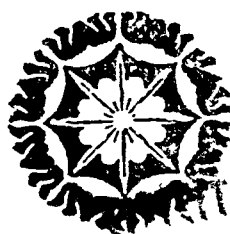
प्रकाशक :

श्री अ. भा. सा. जैन संघ

"समता भवन" रामपुरिया मार्ग,

बीकानेर (राज.) पि. ३३४००१

अनुक्रमणिका निम्नानुसार है :-

● पर्युषण समता संदेश

● श्री अ. भा. सा. जैन संघ बीकानेर

● वर्ष १९८५, वि. सं. २०४१, वीर सं. २५११

● प्राप्ति स्थान :—

१— श्री अ. भा. सा. जैन संघ
रामपुरिया मार्ग, समता भवन बीकानेर (राज.)

२— श्री नानेश निरूपम सूर्य सम्पदा ट्रस्ट
C/o अजय ट्रेडर्स, महात्मा गांधी रोड,
रायपुर, जिला रायपुर (म. प्र.)

३— श्री शांतिलालजी मूणोत
जन सेवा वस्त्र भण्डर
१४९ न्यू रोड, रतलाम (म. प्र.)

प्रथमावृत्ति २०००
मूल्य लागत सात रुपये पचास पैसे } विक्रय मूल्य पाँच रुपये

मुद्रक— अरिहंत प्रिंटर्स
चौमुखीपुल कन्याशाला की गली, रतलाम (म. प्र.)

प्राक्कथन

समता विभूति आचार्य श्री नानेश कीं महती कृपा से वि. सं. २०४१ के चातुर्मास में रत्नपुरी (रतलाम) संघ को संत एवं महासतियाँजी का सानिध्य प्राप्त करने का सौभाग्य मिला।

यथाविधि यथाक्रम धर्मोपदेश से जन मानस में जागृति आना स्वाभाविक ही थी। स्वाध्याय शिविर के अतिरिक्त प्रातःकालीन सामायिक काल में शास्त्रीय ज्ञानार्जन नियमित होने से इस वर्ष पर्यूषण पर्वाराधनार्थ कुछेक स्वाध्यायी वन्धु सेवा देने हेतु उद्यत हुए। अब प्रश्न हुआ कि वहां जाकर क्या सुनावें ?

समता प्रचार संघ, उदयपुर के अंतर्गत इस विषयक सामग्री चयन कराई जाने की वार्ता ज्ञात होने पर उसके अवलोकन से वह अत्यन्त महत्वपूर्ण लगी।

इन्हीं दिनों महासतीजी श्री सूरजकंवरजी की १५, महासतीजी श्री ताराकंवरजी की ८, महासतीजी श्री विनयश्रीजी की ३१ एवं श्रीमती बुद्धिवाई सीसोदिया की ८ की तपस्याओं के प्रसंग आये।

१—उदारमना श्रीमान् शेतानमलजी आत्मज श्री मोतीलालजी सीसोदिया की सुशीला धर्म पत्नी धर्मपरायण श्रीमती बुद्धिवाई जब तपस्या रत थी तब श्री शेतानमलजी सा. ने अपूर्व उल्लास पूर्वक तप की स्मृति में एक स्थाई भेंट देनी चाही जो जन मानस में तपस्या एवं धर्म ध्यान की वृद्धि करती रहे।

इस दृष्टि से उन्हें यह सामग्री इतनी उत्तम प्रतीत हुई कि उन्होंने इसके प्रकाशन में रु. ५००१) के आर्थिक सहयोग की स्वीकृति प्रदान करदी। इनकी लगन व उदारता से एक अत्यावश्यक पठनीय सामग्री समाज को सहज ही उपलब्ध हो गई एतदर्थ ट्रस्ट उनका हार्दिक सम्मान के साथ आभारी हैं।

२—इसी प्रकार महासतीजी श्री विनयश्रीजी की तपस्या को

स्मृति में उनके संसार पक्षीय सदस्यों ने भी ७०१) के योगदान की उत्कंठा प्रदर्शित की एतदर्थ श्रीमान् कंवरलालजी, रूपचन्दजी, फूलचंदजी गेनमलजी, मोहनलालजी, रेखचंदजी, रतनलालजी, पारसमलजी आदि समस्त सांखला परिवार छुईखदान भी धन्यवाद के पात्र हैं।

यह संकलन श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार रतलाम से प्राप्त कर श्री अ. भा. सा. जैन साहित्य समिति की अनुमति से प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रकाशन एवं प्रूफ रीडिंग में श्री शांतिलालजी मूणोत रतलाम वालों का पूर्ण योगदान रहा। इसमें कहीं वीतराग वाणी के विपरीत किसी भी प्रकार की भूल या अशुद्धि रह गई हो तो पाठक हमारा ध्यान आकर्षितकरें ताकि भविष्य में योग्य सुधार या संशोधन किया जा सके।

पर्युषण पर्वार्थ यह संकलन भव्य जनों को लाभान्वित करेगा। इस शुभ भावना के साथ—

निवेदक—

श्री नानेश निरूपम सूर्य सम्पदा ट्रस्ट

श्री नानेश निरूपम सूर्य सम्पदा ट्रस्ट

परिचय

सन् १९८१ अमरावती में श्री संपतमुनिजी के नैत्र द्वय के मोतियाबिंद के आपरेशन के प्रसंग से उनके संसार पक्षीय सदस्यों ने उक्त नाम से एक ट्रस्ट की स्थापना की।

उद्देश्य:—सम्यक् ज्ञान दर्शन की आराधना में सहायक गतिविधियों जैसे अध्ययन, अध्यापन, लेखन, प्रकाशन आदि कार्यों में

जहां भी आवश्यकता एवं उपयुक्तता समझी जाती है. वहां अपनी शक्ति अनुसार सहयोग करते हुए जिन शासन की महती सेवा करना।

सदस्यता:–१–एक साथ १५०१) या जीवन पर्यंत वार्षिक २२५) देने वाले आजीवन संरक्षक सदस्य होंगे।

२–एक मुश्त १००१) या जीवन पर्यंत वार्षिक १५१) देने वाले आजीवन सहायक सदस्य होंगे।

३–एक साथ ७०१) या जीवन पर्यंत वार्षिक १०१) देने वाले आजीवन साधारण सदस्य होंगे।

उस समय में निम्न सदस्य वने:—

संरक्षक–१–श्री केशरीचंदजी धाड़ीवाल रायपुर
२–श्री शांतिलालजी " "
३–श्री अमृतलालजी " मद्रास नं. ३३
४–श्री हरकचन्दजी " मद्रास नं. ४
५–श्री तारावाई सरदारमलजी कोठारी हिंगन घाट

साधारण– १–श्री नेमीचंदजी गोठी वैतूल
२–श्री अमोलकचंदजी सिंघवी हैदरावाद
३–श्री हुकमीचंदजी वोथरा कवर्धा
४–श्री प्रेमचंदजी लूणिया मुंगेली
५–श्री विनोदचंदजी मालू सिवनी
६–श्री वावूलालजा वोरूंदिया विजयनगरम् A. P.

प्रकाशन–ट्रस्ट एवं विभिन्न सहयोगियों के सहयोग से २०३९ में "श्रावक के १२ व्रत, सम्यक्त्व १४ नियम एवं संलेखना सहित" नामक प्रथम पुष्प का प्रकाशन वालोद में किया। २–वर्तमान में सं. २०४१ में इसी प्रकार "पर्यूषण समता संदेश" नामक द्वितीय पुष्प का प्रकाशन रतलाम में हो रहा है।

समता प्रचार संघ, उदयपुर

परिचय

सं. २०३२ कार्तिक शुक्ला ४ दि. ७-११-७५ को श्री अखिल
भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ ने देवलोक में महान् क्रांतिकारी
स्वतंत्रता संग्राम के सुसेनानी श्रीमज्जवाहराचार्य की जन्म
शताब्दी मनाते हुए उनके द्वारा निर्दिष्ट वीर संघ योजना को
मूर्त रूप देने हेतु १. निवृत्ति २. स्वाध्याय ३. साधना ४. सेवा के
चार आधार स्तम्भ बनाये।

निवृति की भावना से स्वाध्याय की ओर गति करने पर
साधना की तीन श्रेणियां- १. उपासक २. साधक ३. मुमुक्षु बनाई
गई। जो व्यक्ति निर्धारित आवश्यक नियमों को पालते हुए
आध्यात्मिक एवं सामाजिक सेवा में योगदान करना चाहते हैं,
उनके लिये जहां श्री नानेशाचार्य चातुर्मासार्थ विराजते हैं
वहां प्रतिवर्ष सावण वदी ८ से ५/७ दिवसीय प्रशिक्षण शिविर
आचार्य श्रीजी के मार्गदर्शन में लगाया जाता है।

प्रशिक्षण में सदस्यों ने जैन दर्शन के व्यापक प्रचार की
दृष्टि से चिंतन किया कि जहाँ संत-सतियाँजी चातुर्मासार्थ नहीं
पहुंच सके उन क्षेत्रों की मांग के अनुसार पर्युषणकाल में सेवाएं
देने हेतु स्वाध्यायियों को प्रोत्साहित किया जाये। इस उद्देश्य की
पूर्ति के लिये सं. २०२६ में समता प्रचार संघ की स्थापना हुई
जो विगत पांच वर्षो से शिविरों के माध्यम से उन्हें प्रशिक्षित
करते हुए १५० स्वाध्यायी बंधुओं के द्वारा सेवाएँ प्रदान करता
हुआ निम्न आयोजनों को जुटाने की ओर गतिशील है।

१—पत्राचार पाठ्यक्रम द्वारा स्वाध्यायियों की ज्ञान वृद्धि करना

२—पर्युषण पर्वाधिराज में स्वाध्यायियों को धर्माराधन कराने हेतु निःशुल्क भेजना।

३—शिविरों के द्वारा स्वाध्यायियों एवं छात्र-छात्राओं को प्रशिक्षित करना।

४—युवा पीढी एवं बालकों में धर्म के प्रति जागृति लाने हेतु विभिन्न प्रतियोगिताएँ आयोजित करना।

५—सत्साहित्य के प्रकाशन द्वारा समता दर्शनी बनाना।

प्रगति के बढ़ते चरण—

प्रतिवर्ष लगभग १ शिविर स्वाध्यायियों के, १ शिविर वीर संघीय सदस्यों के, दो एक शिविर बालक-बालिका एवं युवावर्ग हेतु आयोजित किये जारहे हैं व विशेष गति करने के लिये प्रयास जारी है।

साहित्य प्रकाशन की दृष्टि से "समता स्तवन संग्रह" आदि का प्रकाशन किया गया व अब "पर्युषण समता संदेश" का भी प्रकाशन इसी कड़ी में हो रहा है।

उक्त कार्यों को विशेष गति देने हेतु "दुर्ग" मध्यप्रदेश में एक प्रांतीय शाखा का भी गठन किया है।

निवेदनः—कर्म सिद्धांताधारित जैन धर्म शाश्वत सुख शांति समता प्रदाता होने से इसे जन-जन में प्रचारित करने हेतु आप सभी सादर आमंत्रित है। आप तन मन धन अथवा समय संपत्ति शक्ति से इस कार्य में सहयोग देकर अपने आस पास के क्षेत्रों में दौरे कर उनमें स्वाध्यायी प्रवृति जगावें। धार्मिक पाठशाला एवं स्थानीय शिविर लगाकर प्रत्येक वर्ग को अध्यात्म की ओर जागृत करते हुए आपके अपने "समता प्रचार संघ" से

सभी प्रकार का सहयोग लेते हुए अपनी श्रद्धानुसार निरंतर उदार सहयोग देते हुए प्रशस्त मार्ग की ओर बढ़े।

श्री साधुमार्गी जैन संघ की यह प्रवृत्ति सदैव लोगों में शुभ प्रकाश फैलाती रहे इसी शुभ कामना के साथ—

गणेशीलाल बया
संयोजक समता प्रचार संघ
E ८४ भूपालपुरा उदयपुर (राज.)

प्रकाशकीय

जिन क्षेत्रों को श्रमण वर्ग का वर्षावास नहीं मिल पाता है वहाँ स्वाध्यायी बन्धु पर्युषण में पहुँच कर जिनवाणी का पान कराने का प्रयास करते है। वहां उन्हें व्याख्यान देने में सुविधा रहे, इस हेतु यह संकलन प्रकाशित कर रहे हैं।

आचार्य प्रवर आदि द्वारा अपनी नेश्राय से प्रस्थापित की (परठी) गई सामग्री को श्री गणेश जैन ज्ञान भंडार रतलाम से प्राप्त कर साहित्य समिति के सदस्यों द्वारा अध्ययन कर लेने पर जो सामग्री उपयोगी समझी जाती है वह जन हिताय प्रकाशित की जाती है। इसी शृंखला में यह प्रकाशन हो रहा है।

सं. २०४१
आसोज सुदी २
दि. २६-९-१९८४

गुमानमल चोरड़िया
अध्यक्ष-श्री अ. भा. सा. जैन साहित्य समिति
(अंतर्गत-श्री अ. भा. सा. जैन संघ)

पर्युषण समता संदेश

शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	५	वश्यगमन	वैश्यागमन
२	४/७	अंतगढ़	अंतगड़
२	८	१२	१६
२	६	१६	१२
२	१६	प	पाप
३	१३	अष्ठम	अष्टम
४	८	लोय	लोए
५	१५	तीर्थंकारों	तीर्थंकरों
६	१६	एतिहासिक	ऐतिहासिक
६	२०	ओर	और
१२	३	भोग	भोगने
१२	१६	श्रो	श्री
१६	१६	प्रागिधान	प्रणिधान
१६	२०	प्राणयाम	प्राणायाम
२७	२४	सांस्कृतिक	सांसारिक
२०	१६	सेव	सेवा
२०	२४	जीवन	जीवन
२२	८	Samething	Something
२२	६	Caractor	Charactor
३४	११	धर्म	धर्म
३४	१६	समयग्ज्ञानी	सम्यग्ज्ञानी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५	२२	सम्यत्क्वी	सम्यक्त्वी
३८	२३	समाधन	समाधान
४०	१९	ही	ह्री
४०	२६	उस	वह
४०	२६	ने	x
४१	४	को	में
५२	२	चारित्राराधना	दानाराधना
५३	५	चौरी	चोरी
५५	२३	के लिए	x
५७	१४	की	को
५७	२१	प्रभाव	अभाव
६०	२५	भगवन्	भगवान
६१	२३	होकर	होकर भी
६३	५	अमोध	अमोघ
६३	१६	वंथइ	वंधइ
६६	१८	में	मैं
६६	२६	सर्मथन	समर्थन
६९	२	क	के
७०	२३	नेरे	तेरे
८२ A	४	शरीरिक	शारीरिक
८२ C	२०	अंतगढ़	अंतगड़
८५	१	सभी जीवों से	x
८५	१३	से	से इस लोक में
८५	१४	करे।	करे। पर
८५	२५	हूं।	हैं।
८६	३	पादोपोगमन	पादपोपगमन

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८६	११	गया।	जा रहा है।
८७	१२	मत्रियों	मंत्रियों
८८	५	अंतमुं हर्त	अंतमुं हूर्त
८९	१८	चिट्ठई	चिट्ठइ
८९	१९	नाहीइ	नाही य
९०	६	अंतगढ़	अंतगड़
९६	२४	है "	x
९८	३	प्रघान	प्रधान
१०४	१६	ओर	और
१०६	११	दानों	दोनों
१०६	२२	के के	के
१०६	२२	करा	कर
१०६	२३	के	x
११२	१८	महत्तारागारेणं	महत्तरागारेणं
११३	५	वत्तियागरेणं	वत्तियागारेणं
११५	२०	व्रत के	व्रती को
११७	९	वनसपति	वनस्पति
१२२	१६	पहुंचावेला	पहचाणेला
१२३	३	टटाकर	हटाकर
१२३	१७	धर्य	धर्म
१२९	४	हालरियो	हालरिया
१३१	२५	भाखी अभय	होसी अमम
१३१	१८	फुरमावे	फरमावे
१३३	१५	मनावणारे या	x
१३६	७	मली	भणी
१३६	९	कथ	कंथ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३६	१७	अवर	ऊंवर
१३६	२६	चौममल	चौथमल
१३७	१७	वैठा रहूं	वैठारहूं डर में
१५०	९	मां है	मांहि
१५०	१७	टूक	टुक
१५२	४	कोमल भाव वहाना	जगना और जगाना
१५३	७	है	हे !
१५४	१७	पायो	पायां
१५४	२२	संसारी	संसारी रे
१५५	४	धन	घन
१५५	६	दुपित	दूषित
१५५	१६	तीव्र	तीव्र
१५५	१९	पुरुषाथ	पुरूपार्थ
१५५	२०	पुरुषाथ	पुरूषार्थ
१५५	२४	हं ।।टेर।।	हूँ ।।टेर।।
१५६	४	व्रत	व्रत
१५६	१४	पापो	पापी
१५६	१५	अवु	अंवु
१५६	२२	मतपिंड	मदपिंड
१५६	२३	ठारे	टारे
१५८	२१	जलुसों	जुलूसों
१५९	१९	पाये	आये
१५९	२०/२४	हां	हा
१६०	२	हां	हा
१६०	३	हो पाया।	पाया था।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६०	६	दिवस	x
१६०	२१	सुने	सूनें
१६०	२५	हम औरों को देवें	औरों को दे देवें
१६०	२६	जो नित	जीवित
१६२	२३	रुप	रूप
१७०	१८	छत्तो	छत्ती
१७२	६	शोमा	शोभा
१७२	१३	ले	ते
१८७	८	तिणवार	तिणवारजी
१८६	२३	वश	वश
१६१	३	पार	पारजी
१६१	१३	भव	×
१६१	२०	भिकरण	त्रिकरण
१६१	२६	इसे	इस
१६२	२	सुर्यौदय	सूर्योदय

सादर समर्पण

समता दर्शन प्रणेता जन-जन पथ प्रदर्शक अभि॰ ज्योतिपुन्ज परम श्रद्धेय आचार्य भगवत् पूज्य श्री १००८ ॰ नानालालजी म. सा. के पुनीत कर कमलों में-

सं. २०४१ माघ कृष्णा २
दि. ८-१-८५ मंगलवार
आचार्य पद दिवस

श्री नानेश निरुपम सूर्य-
संपदा ट्रस्ट

स्वाध्याय का महत्व

सज्झाएणं भंते ! जीवे किं जणयई ?

सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥१८॥ उ.अ. २९

भावार्थ—हे भगवन् ! स्वाध्याय करने से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ?

उत्तर—स्वाध्याय करने से जीव के ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट होते है ॥१८॥

स्वाध्याय के ५ भेद हैं— १ वाचना, २ पुच्छना, ३ परिवर्तना, ४ अणुप्रेक्षा, ५ धर्म कथा।

हे भगवन् ! वाचना से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ?

उत्तर—वाचना से कर्मों की निर्जरा होती है। सूत्र की असातना नहीं करता है। जिससे जीव को तीर्थ धर्म का अवलंबन लेने से कर्मों की महा निर्जरा होती है और महा पर्यवसान होता है ॥१९॥

हे भगवन् ! प्रति पृच्छना से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ?

उत्तर—प्रति पृच्छना से जीव के सूत्र अर्थ और दोनों की विशुद्धि होती है। कांक्षा मोहनीय कर्म का छेदन होता है ॥२०॥

हे भगवन् ! परिवर्तना से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ?

उत्तर—परिवर्तना (परियट्टना) से जीव व्यंजनों को जानता हुआ व्यंजनलब्धि को प्राप्त होता है ॥२१॥

हे भगवन् ! अणुप्रेक्षा से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ?

उत्तर—अणुप्रेक्षा (भावना) से जीव आयु के अतिरिक्त सात कर्मों के गाढ़ बंधनों को ढीला (शिथिल) करता है। तीव्र अनुभाग (रस) को मंद करता है। अधिक प्रदेशों को कम करता है। आयुकर्म किसी जीव के बंधता है किसी के नहीं। असाता वेदनीय कर्म का बार वार संग्रह नहीं करता है और अनादि अनंत लम्बे मार्ग वाले चार गति रूप संसार वन को शीघ्र ही पार कर देता है ॥२२॥

हे भगवन् ! धर्म कथा से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ?

उत्तर—धर्म कथा (उपदेश देने) से जीव के कर्मों की निर्जरा होती है। धर्म कथा से प्रवचन प्रभावना होती है जिससे जीव भविष्य के लिये कल्याण करने वाले कर्मों का वन्ध करता है ॥२३॥

प्रथम दिवस—

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहरायनाथ,
तुभ्यं नमः क्षितितलामल भूपणाय।
तुभ्यं नम स्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन भवोदधि शोषणाय ॥

द्वितीय दिवस—

वीरः सर्व सुरासुरेन्द्र महितो, वीरं वुधा संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्वकर्म निचयो, वीराय नित्यं नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीवृति कीर्ति कांति निचयो, श्रीवीर ! भद्रं दिशः ॥

ब्राह्मी चंदनबालिका भगवती, राजीमती द्रौपदी,
कौशल्याच मृगावतीच सुलसा, सीता सुभद्रा शिवा।
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता, चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सुन्दरी दिनमुखे, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥

तृतीय दिवस—

अर्हंतो भगवंत इन्द्रमहिता, सिद्धाश्च सिद्धि स्थिता,
आचार्या जिन शासनोन्नतिकरा, पूज्या उपाध्याय का।
श्री सिद्धांत सुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधका,
पंचैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु नो मंगलम् ॥

चतुर्थ दिवस—

सिद्धाणं बुद्धाणं पारगयाणं, परंपरा पारगयाणं।
लोयग्गमुवगयाणं, णमो सया सव्व सिद्धाणं ॥
जो देवाण वि देवो, जं देवा पंजलि नमंसंति।
तं देव देव महियं, सिरसा वंदे महावीरं ॥
एक्कोवि णमुक्कारो, जिणवर वस्सहस्स वद्धमाणस्स।
संसार सायराओ, तारइ नरं व नारीं वा ॥

पंचम दिवस—

संसार दावानल दाहनीरं, सम्मोह धूलि हरणे समीरम्।
मायारसादारणसारसीरं, नमामिवीरं गिरिसार धीरम् ॥
मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतम प्रभु।
मंगलं स्थूलिभद्राद्या, जैन धर्मोस्तु मंगलम् ॥
सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारकम्।
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ॥

षष्ठ दिवस—

वीर हिमाचल से निकली, गुरु गौतम के श्रुत कुंड ढरी है।
मोह महाचल भेद चली, जगकी जड़ता सब दूर करी है ॥
ज्ञान पयोनिधि मांहि रली, बहुभंग तरंगन ते उछरी है।
ता शुचि शारद गंग नदी, प्रति मैं अंजलि निज शीप धरी है।

सप्तम दिवस—

जो भगवती त्रिशलातनय, सिद्धार्थ कुल के भान हैं।
लिया जन्म क्षत्रिय कुंड में, प्रियनाम श्री वर्द्धमान है॥
जो स्वर्ण वर्ण प्रलंब भुज, सरसिज नयन अभिराम हैं।
करुणासदन मर्दन मदन, आनंद मय गुण धाम हैं॥
जो अनंत ज्ञानी हैं प्रभु, और अनंत शक्तिमान हैं।
किस मुंह से गुण वर्णन करूं, मेरी तो एक जबान है॥
योगीन्द्र मुनि चिंतन निरत, जिनको कि आठों याम हैं।
उन वर्द्धमान जिनेश को, मेरे अनेक प्रणाम हैं॥

अष्टम दिवस—

पूरब तैंयासी लाख, कियो जिन राज सुख।
लाख एक रह्यो जब, ऐसी दिलधारी है॥
धन सुत बंधव नारी, देखो है अनंती वारी।
काम नहिं आवे ऐसी, जिनजी विचारी है॥
भरत बुलाय समझाय, सब राज दीनो।
आप लोच लेके भये, महाव्रतधारी है॥
प्रथम जिनंदचंद, कहत है विनोदीलाल।
ऐसे नाभिनंदन को, वंदना हमारी है॥
श्री नाभजी के नंदन को वंदना हमारी है।
चौवीसमां महावीर, सूरवीर महाधीर॥
वाणी मीठी खांड खीर, सिद्धारथ नंद है।
नागनी सी नारी जाण, घटमाँ वैराग आण॥
जोग लियो जगभाण, टाल्या मोह फंद है।
चवदे हजार संत, तार दिया भगवंत॥
करमों का किया अंत पाम्या सुखकंद है।
कहे कवि चंद्रभाण, सुनो हो विवेकवान॥
महावीर किया ध्यान, उपजे आनंद है।
श्री वर्धमान जाप जपियां सदा ही आनंद है॥

पर्यूषण संदेश

(प्रारंभ में सामायिक पूर्वक हमेशा निम्न नियम पालन हेतु प्रेरणा देनी)

साधक को आजीवन सप्तकुव्यसन (शराब, मांस, अण्डा, जुआ, चोरी, शिकार, परस्त्रीगमन, वेश्यागमन) एवं तम्बाखू का त्याग करना चाहिए।

प्रतिदिन प्रातः उठते एवं रात्रि को सोते समय ११-११ बार नमस्कार मंत्र का ध्यान करना। प्रातः शय्या से नीचे उतर कर पूर्व या उत्तर या गुरु महाराज की दिशा सन्मुख विधियुक्त वंदन करना। बड़ों को नमन एवं आपस में जय-जिनेन्द्र करना।

卐 पर्यूषण पर्वाराधन के सामान्य नियम

१–प्राणी मात्र पर दया भाव रखना, किसी की हिंसा नहीं करना। २–झूठ नहीं बोलना, मार्मिक सत्य भी नहीं कहना, गाली नहीं देना, कटु शब्द नहीं बोलना, असभ्य भाषण नहीं करना. निंदा नहीं करना, लड़ाई झगड़ा नहीं करना, हो जाय तो तत्काल क्षमा लेना। ३. चोरी नहीं करना, ताश चौपड़ आदि नहीं खेलना, नाटक, सिनेमा आदि नहीं देखना, भंग आदि का नशा नहीं करना। ४. एक विगय छोड़ना, हरी एवं सचित्त वस्तु का त्याग करना, स्नान नहीं करना। ५. रात्रि में चौविहार करना, पूर्ण ब्रह्मचर्य पालना। ६. सभी समय में धार्मिक क्रियाओं का नियमित रुप से पालन करते हुवे प्रतिक्रमण कर आलोचना करना, धर्मदलाली करना, वैयावच्च करना। ७. क्रोध कषाय आदि नहीं करना।

पर्यूषण पर्वाराधन के दैनिक कार्यक्रमः-

दो घड़ी रात रहते उठकर ध्यान, चिंतन, मनन, वंदन, राईसी प्रतिक्रमण, नमन, जय जिनेन्द्र करना। २. सूर्योदय होने पर प्रार्थना-ध्यान साधना स्वाध्याय करना। ३. प्रवचन-अंतगढ़ सूत्र। ४. मध्यान्ह-कल्पसूत्र। ५. सायंकाल प्रतिक्रमण, प्रश्नोत्तर स्वाध्याय आदि करना। ६- ध्यान कर सागारी संथारे पूर्वक शयन।

प्रातः प्रवचन में अंतगढ़ सूत्र-सैलाना की पुस्तक के पृष्ठ १ एवं श्री प्यारचन्दजी म. सा. के पृष्ठ प्रथम दिवस १६ पृष्ठ तक ज्ञानाराधना- ज्ञान पंचमी की कथा एवं सप्त कुव्यसन मुक्ति।

द्वितीयः— ३६/२६ दर्शनाराधना—अर्हन्नक श्रावक, सम्यकत्व स्वरुप।

तृतीयः— ७१/६४ चारित्राराधना—मुनि नंदीषेण, प्रत्याख्यान धारण।

चतुर्थः— ९९/८७ दानाराधना—श्रेयांसकुमार, १२ व्रत ३ मनोरथ, १४ नियम।

पंचमः— १२२/११३ शीलाराधना— सेठ सुदर्शन. ५ महा व्रत ५ समिति ३ गुप्ति।

षष्ठः— १३४/१३१ तपाराधना— काकंदी का धन्ना, १८ प परिहार।

सप्तमः— १६६/१५६ भावाराधना— प्रसन्नचन्द्र राजर्षि, ध्यान साधना।

अष्टमः— १८५/१७५ पूर्ण-आत्म शुद्धि—उदायन राजा— क्षमा-याचना।

मध्यान्ह—कल्पसूत्र वाचन–उ० श्री प्यारचन्दजी म. सा.

प्रथम दिवस—२५ पृष्ठ तक, क्रोध विजय, माता पिता, सास ससुर का पुत्र-पुत्री, पुत्रवधू एवं जमाई के प्रति पारस्परिक कर्तव्य विषयक वर्णन।

द्वितीय दिवस—७६ तक मान विजय-स्वधर्मी भाई बहनों के प्रति

तृतीय दिवस—११० तक, माया विजय–पति पत्नी के पा. क.

चतुर्थ दिवस—१५१ तक, लोभ विजय–स्वामी सेवक के पा. क.

(अकिंचनत्व)

पंचम दिवस—१८२ तक, संयम–स्वजन संबंधियों के पा. क.

षष्ठ दिवस—२१२ तक, तप–नागरिक ग्रामीणों के पा. क.

(ब्रह्मचर्य)

सप्तम दिवस—२४२ तक, सत्य–राजा प्रजा के पारस्परिक कर्तव्य

अष्टम दिवस—२७४ तक, शौच–आत्मा शरीर के पा. कर्तव्य।

卐 संवत्सरी महापर्व 卐

सवणे नाणे य विन्नाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अणासवे तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धि॥
पक्षपातो नमे वीरे, द्वेषः न कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यं परिग्रहः॥
जुवार के मोती, मेरी भूल क्षमा कर देना।

उदायन एवं चंड प्रद्योतन की कथा:—

जिन राज वधाओ म्हारी दया माता पाटावली, आलोचना, प्रति क्रमण, क्षमा याचना।

पर्यूषण पर्वाराधन के दैनिक कार्यक्रमः–

दो घड़ी रात रहते उठकर ध्यान, चिंतन, मनन, वंदन, राईसी प्रतिक्रमण, नमन, जय जिनेन्द्र करना। २. सूर्योदय होने पर प्रार्थना-ध्यान साधना स्वाध्याय करना। ३. प्रवचन-अंतगड सूत्र। ४. मध्यान्ह-कल्पसूत्र। ५. सायंकाल प्रतिक्रमण, प्रश्नोत्तर स्वाध्याय आदि करना। ६- ध्यान कर सागारी संथारे पूर्वक शयन।

प्रातः प्रवचन में अंतगढ़ सूत्र-सैलाना की पुस्तक के पृष्ठ १ एवं श्री प्यारचन्दजी म. सा. के पृष्ठ प्रथम दिवस १६ पृष्ठ तक ज्ञानाराधना- ज्ञान पंचमी की कथा एवं सप्त कुव्यसन मुक्ति।

द्वितीयः— ३६/२९ दर्शनाराधना–अर्हन्नक श्रावक, सम्यकत्व स्वरुप।

तृतीयः— ७१/६४ चारित्राराधना–मुनि नंदीषेण, प्रत्याख्यान धारण।

चतुर्थः— ९९/८७ दानाराधना–श्रेयांसकुमार, १२ व्रत ३ मनोरथ, १४ नियम।

पंचमः— १२२/११३ शीलाराधना– सेठ सुदर्शन. ५ महा व्रत ५ समिति ३ गुप्ति।

षष्ठः— १३४/१३१ तपाराधना– काकंदी का धन्ना, १८ प परिहार।

सप्तमः— १६६/१५६ भावाराधना– प्रसन्नचन्द्र राजर्षि, ध्यान साधना।

अष्टमः— १८५/१७५ पूर्ण-आत्म शुद्धि–उदायन राजा– क्षमा-याचना।

व्यान्ह—कल्पसूत्र वाचन–उ० श्री प्यारचन्दजी म. सा.

थम दिवस—२५ पृष्ठ तक, क्रोध विजय, माता पिता, सास ससुर का पुत्र-पुत्री, पुत्रवधू एवं जमाई के प्रति पारस्परिक कर्तव्य विषयक वर्णन।

द्वितीय दिवस—७६ तक मान विजय-स्वधर्मी भाई बहनों के प्रति

तृतीय दिवस—११० तक, माया विजय–पति पत्नी के पा. क.

चतुर्थ दिवस—१५१ तक, लोभ विजय–स्वामी सेवक के पा. क.

(अकिंचनत्व)

पंचम दिवस—१८२ तक, संयम–स्वजन संबंधियों के पा. क.

षष्ठ दिवस—२१२ तक, तप–नागरिक ग्रामीणों के पा. क.

(ब्रह्मचर्य)

सप्तम दिवस—२४२ तक, सत्य–राजा प्रजा के पारस्परिक कर्तव्य

अष्टम दिवस—२७४ तक, शौच–आत्मा शरीर-के पा. कर्तव्य।

卐 संवत्सरी महापर्व 卐

सवणे नाणे य विन्नाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अणासवे तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धि॥
पक्षपातो नमे वीरे, द्वेषः न कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्य परिग्रहः॥
जुवार के मोती, मेरी भूल क्षमा कर देना।

उदायन एवं चंड प्रद्योतक की कथा:—

जिन राज वधाओ म्हारी दया माता पाटावली, आलोयणा, प्रति क्रमण, क्षमा याचना।

पर्यूषण-संदेश

प्रथम प्रवचन

(ज्ञानाराधना)

मंगलाचरण

णमो अरिहंताणं,
णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं
णमो लोय सव्व साहूणं ॥
एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ॥

卐 वीर स्तुति 卐

संसार दावानल दाहनीरं, सम्मोह धूलि हरणे समीरम् ।
मायारसादारण सारसीरं, नमामि वीरं गिरि सार धीरम् ॥

卐 आचार्य स्तुति 卐

महा समुद्दाओं गंभीर तरंग, सुसोमतरगं ससिमंडलाओ ।
विसिट्ठमयलं मेरुगिरीओ, नमामि नानायरियं पसिद्धम् ॥

संगीत:— "यह पर्व पर्यूषण आया"

(यह पर्व पर्यूषण आया, दुनियां में आनंद छाया जी । यह
करे कोई वेला और तेला कोई देवे कर्म को ठेला जी ॥१॥ यह
क्रोधादिक दोष मिटावा, निज आतम शुद्धि करावाजी ॥२॥ यह
पर्व ज्योति जगाने आया, तुम स्वागत करलो भायाजी ॥३॥ यह
कियो आराधन जिनवर देवा, परमानंद पद लेवाजी ॥४॥ यह

परिउपशम रंग जमावा, आया शांति रस बरसावा जी ॥५॥ यह
आतम रंग शुद्ध जमावा, फिर मुक्ति महल सिधावाजी ॥६॥ यह
द्रव्यभावे तप करि तावा, मल विषय कषाय हटावाजी ॥७॥ यह
समभावे शुद्ध करो करणी, यदि शिवरमणी हो वरणीजी ॥८॥यह
सम्यक्त्व सहेली बुलाओ, सब जिनवर पद को ध्यावोजी ॥९॥यह
तप त्यागने खूब बढ़ावो, चाहो मुक्ति महल यदि जावोजी॥१०॥यह
पौषध उपवासादि बेला, यह लगा धर्म का मेला जी ॥११॥ यह)

(बन्धुओं ! पर्यूषण पर्व का यह प्रथम दिवस अपूर्व आनंद एवं आत्मिक उल्हास की ओर इंगित कर रहा है, यह दिवस बारह मास में एक ही बार उपस्थित होता है, मानव को आत्मिक शुद्धि की ओर बढ़ने की प्रेरणा दिलाता है। आत्मिक शुद्धि, यह भीतरी शुद्धि है, आभ्यंतर शुद्धि है, वास्तविक शुद्धि मानी गई है। वही वास्तविक सुख एवं आनंद की उपलब्धि की साधिका है, उस आभ्यंतर शुद्धि को साधने के लिए प्रभु महावीर की एवं अन्य अनंत तीर्थंकारों की पवित्र आज्ञाओं को जीवन में स्थान देना है, वे आज्ञाएं सही ज्ञान, सही श्रद्धा एवं तदनुरुप आचरण के रुप में विद्यमान हैं, इनकी आराधना करना ही भगवान की आराधना है।)

भगवती सूत्र में गौतम स्वामी ने प्रभु महावीर से प्रश्न किया:— "कति विहेणंभंते आराहणा पण्णत्ता ?" प्रभु ने उत्तर दिया:—"गोयमा ! आराहणा तिविहा पण्णत्ता-तंजहा-नाणाराहणाए, दंसणाराहणाए, चरित्ताराहणाए ?

प्रश्न:— प्रभु ! आराधना कितनी प्रकार की कही गई है ?
उत्तर:— गौतम ! आराधना तीन प्रकार की कही गई है।

वह इस प्रकार है:— ज्ञान आराधना, दर्शन आराधना और चारित्र आराधना।

यही आराधनाएं आत्मिक शुद्धि के लिए उपादेय
संक्षिप्त रुप स्वामी उमास्वाति ने तत्वार्थ सूत्र में संस्कृ
प्रथम सूत्र के रुप में निवद्ध किया है। वह यह है:-"स
ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः।" आंतरिक शुद्धि के वि
की शुद्धि नहीं होती। वाह्य शुद्धि तो इस आत्मा ने वहु
और अनादि काल से करती आरही है, अर्थात् पानी
को खूव मल-मल कर धोती आई है पर उससे जीवन
नहीं वन पाई। यदि पानी से ही जीवन की शुद्धि
मछलियां कभी की मोक्ष प्राप्त कर लेती। यह बात
चिंतक भली-भांति समझते हैं, और वह तदनुसार कथन करने में
भी संकोच नहीं करते। महाभारत में भी कहा है:—

आत्मा नदी संयम तोय पूर्णा, सत्यावहा शीलतटा दयोर्मि।
तत्राभिषेकं कुरु पांडु पुत्राः न वारिणा शुद्धय तिचान्तरात्मा॥

इस श्लोक का प्रतिपादन कृष्ण महाराज ने पांडवों को उद्‌वोधन देते हुए किया। घटना इस प्रकार की थी—

महाभारत के युद्ध के पश्चात् पाण्डवों के हाथ लगा जन शून्य राज्य। वे अपने स्वजन स्नेही वंधुओं के खोजाने से पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगे और आत्मिक शांति प्राप्त करने के लिए उन्होंने तीर्थयात्रा करने का निश्चय किया।

अपने विचार जव उन्होंने महाराज कृष्ण के सामने रखे और उनसे भी साथ में चलने का निवेदन किया तव प्रज्ञावान श्री कृष्ण महाराज ने पाण्डवों से कहा— अहो! आत्मिक शांति हेतु आप लोगों ने तीर्थयात्रा करने का क्या ही अच्छा निर्णय किया है। मैं भी आपके साथ चलता किंतु क्या करुं; मैं इस समय राज्य व्यवस्था में इतना उलझा हुआ हूं, कि किंचित् मात्र

भी अवकाश नहीं हैं, पर मेरा एक काम करो, मेरा प्रतिनिधित्व करने वाली इस तुम्बी को साथ ले जाओ और जहां जहां भी तुम स्नान एवं दर्शन करो इस तुम्बी को भी अवश्य ही स्नान कराना।

पांडवों ने श्री कृष्णजी की विवशता देखकर तुम्बी लेते हुवे उनसे निवेदन किया कि अवश्य ही हम जहां जहां स्नान एवं दर्शन करेंगे इस तुम्बी को आपके स्थान पर समझकर पहले इसे स्नान करावेंगे। विदाई देते हुवे श्री कृष्ण ने पुनः अपनी वात को दोहराते हुवे कहा–देखो ! तुम्बी को भूल न जाना। पाण्डवों ने स्वीकृति देते हुवे तुम्बी को साथ लेकर तीर्थयात्रा हेतु प्रस्थान कर दिया।

भारत के प्रमुख तीर्थस्थानों में जहां जहां भी पाण्डव गए, वहां याद कर के पहले तुम्बी को स्नान कराते, मानो श्री कृष्णजी ही साथ में हों तत्पश्चात् वे स्नान एवं दर्शन करते। कालान्तर में जब पाण्डवों ने द्वारका नगरी में श्री कृष्णजी के महलों में प्रवेश किया तब द्वारकाधीश ने उनका बड़े प्रेम से स्वागत किया।

कुशल समचारों के पश्चात् श्री कृष्णजी ने अपनी तुम्बी के विषय में पूछा कि इसे कभी स्नान कराना तो नहीं भूले ? पाण्डवों ने कहा कि हमने तो इसके स्थान पर आप को ही समझकर पहले इसे स्नान कराया और बाद में हम स्नान करते।

श्री कृष्णजी ने सधन्यवाद तुम्बी को ग्रहण करते हुए पाण्डवों से कहा कि अब इस उपलक्ष में मैंने प्रीतिभोज करने का निश्चय किया है, आप लोग भी तब तक ठहर कर मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।

राज्य कर्मचारियों, अधिकारियों एवं नगर के प्रतिष्ठित सज्जनों को दूसरे दिन प्रातःकाल में होने वाले प्रीतिभोज के लिए आमन्त्रित किया गया। दूसरे दिन राज्य दरवार में जव सब लोग उपस्थित हो गये तव पाण्डव भी यथास्थान वैठ गए। श्री कृष्णजी ने उस समय उक्त तुम्वी को उपस्थित महानुभावों को दिखलाते हुवे कहा कि राज्य व्यवस्था के कार्य में व्यस्त होने से मैं पाण्डवों के साथ त्तीर्थ यात्रा करने नहीं जा सका, परन्तु मैंने अपने स्थान पर पाण्डवों को इस तुम्बी को देते हुए कहा कि जहां जहां भी तीर्थयात्रा करते समय स्नान एवं दर्शन करो तो मेरा प्रतिनिधित्व करने वाली इस तुम्वी को भी स्नान कराना न भूलना आज इसी प्रसंग से प्रीतिभोज का आयोजन किया गया है। यह तुम्बी सव स्थानों में स्नान करने से पवित्र हो गई है। आप लोगों को पहले इसी का प्रसाद पाना चाहिए, ऐसा कहते हुए नौकरों को तुम्वी का चूर्ण वनाकर लाने की आज्ञा दी।

राजाणां हुक्मानां की उक्ति के अनुसार तुम्वी का अविलम्व चूर्ण तैयार हो गया। श्री कृष्णजी ने पाण्डवों के द्वारा ही उपस्थित सभी सदस्यों को उक्त चूर्ण का प्रसाद वांटने एवं स्वयं को ग्रहण करने का आदेश दिया। देखते ही देखते सभी सदस्यों ने प्रसाद ग्रहण किया, श्री कृष्णजी ने भी प्रसाद लिया।

श्री कृष्णजी के संकेतानुसार उपस्थित सभी सज्जनों ने प्रसाद का भोग किया, किंतु तत्काल ही सभी ने मुंह फेरकर उसे थूक दिया। श्री कृष्णजी ने पूछा क्या वात है? आप लोगों ने मुंह पीछे क्यों कर लिया? तव साहसिक सज्जनों ने कहा कि महाराज! यह प्रसाद तो कड़ुवा है। श्री कृष्णजी ने

पाण्डवों की ओर देखते हुए पूछा कि क्या तुम्बी को सभी जगह स्नान नहीं कराया गया ? तब पाण्डवों ने उत्तर दिया कि हम लोगों ने सभी जगह बाद में स्नान एवं दर्शन किया किंतु इस तुम्बी को पहले ही स्नान कराया था। तब श्री कृष्णजी ने सभी सभासदों को सम्बोधित करते हुवे पाण्डवों से कहा मेरे मित्रों ! बाह्य शारीरिक शुद्धि से अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं हो सकती। संयम रुपी पानी से भरी हुई आत्मा रुपी नदी, जिसका सत्य रुपी वेग है, शील रुपी तट है, जिसमें दया रुपी तरंगें हिलोरें ले रही है, ऐसी नदी में स्नान करने से अंतर या अंतरात्मा को शुद्ध एव पवित्र बनाया जा सकता है। हे पांडु पुत्र ! उसमें स्नान करो, केवल पानी से शारीरिक शुद्धि करने से अंतरात्मा की शुद्धि नहीं हो सकती। बन्धुओं ! इस रूपक से आप भलीभांति समझ गए होवेंगे कि आंतरिक शुद्धि का होना परम आवश्यक है। आंतरिक शुद्धि के लिए ही ये पर्यूषण महापर्व के आठ दिन नियत किए गए हैं, जिससे हम शास्त्र रूपी महासागर में प्रति-दिन अंतरात्मा की उत्तरोत्तर शुद्धि करते हुवे आठवें दिन शांत प्रशांत निर्मल मन से संवत्सरी पर्व की आराधना कर सकें।

पर्यूषण पर्व के आठ दिन एवं संवत्सरी की एतिहासिक महत्ता:–

प्रश्न – वर्ष के ३६५ दिनों में ओर चातुर्मास के १२० दिनों में इन्हीं आठ दिनों में यह कार्यक्रम क्यों रखा गया ? और आठ ही दिनों तक क्यों ? दिगम्बर समाज की तरह १० दिन का या कम ज्यादा दिनों का क्यों नहीं रखा गया ?

उत्तर—वर्ष के अन्यान्य दिनों में संसारी प्राणी अपनी-अपनी आजीविका के साधनों को जुटाने में लगे रहते हैं। शादी विवाहों में व्यस्त रहते हैं। त्यागी महात्मा संत मुनिराजों का भी ग्रामानुग्राम विचरण होता रहता है। जब कि चातुर्मास काल के प्रारंभ से शादी विवाह का भी प्रायः प्रसंग नहीं रहता। कृषक आदि भी इस समय तक खेती आदि के कार्य से प्रायः निवृत्त हो जाते हैं लोग अपने-अपने आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर अवकाश में रहते हैं वर्षा भी पर्याप्त हो चुकी होती है जिससे आवागमन के मार्ग अवरुद्ध हो जाते है। इस समय तक छोटे-छोटे जीव जंतु हरी वनस्पति आदि की भी अधिकतर उत्पत्ति हो जाती है जिससे संत महात्मा भी चातुर्मास काल के प्रारंभ से ही नियत स्थान पर विराजमान रहते हैं।

चातुर्मास प्रारंभ होने के ४९ वें, ५० वें दिन (घड़ी पल की अपेक्षा से) संवत्सरी महापर्व की आराधना का कारण यह भी है कि भगवान महावीर स्वामी से लेकर आज तक पूर्वाचार्यों ने इसे शाश्वत पर्व के रूप में मनाया है।

संवत्सरी की व्युत्पत्ति इस प्रकार है:—

" संवत्सरे भव संवत्सर तस्यास्तीति संवत्सरी।"

समवायांग सूत्र में कहा है :—

समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए।
मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ॥

श्रमण भगवन महावीर स्वामी ने अषाढी पूर्णिमा से एक मास बीस रात्रि बीतने पर इस संवत्सरी पर्व को मनाया। अतः प्रत्येक मानव को इसी दिन मनाना चाहिये।

संत सतियांजी के लिए इस दिन चौविहार उपवास करके आत्मिक आराधना करने का विधान है और श्रावक श्राविका भी यथाशक्ति तेविहार चौविहार उपवास पूर्वक पौषधादि करते है। यदि संत सतियांजी ने इस दिन चारों आहार में से एक भी आहार ग्रहण किया तो चौमासिक प्रायश्चित्त आता है। (" निशीथ सूत्र १० ") इसीलिए आज भी उसी परंपरा से इस पर्व को इसी दिन मनाया जाता है।

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में उत्सर्पिणी काल के प्रथम आरे का प्रारंभ बतलाते हुवे लिखा है कि श्रावण कृष्णा प्रतिपदा (एकम) को बालावकरण और अभीच नक्षत्र में अनंत गुण द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की वृद्धि के साथ प्रथम आरा प्रारंभ हुवा। इक्कीस हजार वर्ष में उस " दुखमा दुखमी " नामक प्रथम आरे के समाप्त होने पर अनंत गुण वृद्धि को लिए हुवे श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से ही "दुखम" नामक द्वितीय आरा प्रारंभ हुवा।

प्रारंभ में "पुष्कलावर्त" नामक महामेघ सात अहो रात्रि पर्यंत गर्जना के साथ निरंतर बरसता रहा। इस महान वर्षा के फल स्वरुप तप्त लोहे के समान जलती हुई पृथ्वी शीतल हो गई। इसके बाद सात दिनों तक " क्षीर " नामक महामेघ अविराम गति से बरसा, जिससे भूमि के अशुभ वर्ण गंध स्पर्श उपशांत होकर शुभ रूप में बदल गए। तत्पश्चात् सात दिनों तक आकाश निर्मल रहा। बाद में " घृत " नामक महामेघ सात दिन तक निरंतर बरसता रहा, जिससे भूमि का अशुभ रस शुभ हुवा। तत्पश्चात् " अमृत " नामक मेघ के सात दिनों तक लगातार बरसने से वनस्पति के अंकुर प्रस्फुटित हुवे। बाद में सात दिनों तक पुनः आकाश स्वच्छ रहा। तत्पश्चात् सात दिन पर्यंत 'रस' नामक मेघ की निरंतर वर्षा होने से वनस्पति में तीक्ष्ण, कटुक,

काषायिक, अम्ल एवं मधुर रूप पांचों प्रकार के रस के साथ शक्तिदायक तत्व का संचार हुवा। और इस तरह धान्य वनस्पति फल फूल आदि मानव के भोग योग्य वन गए।

इस प्रकार दूसरे आरे के प्रारंभ से ५० वें दिन आकाश के स्वच्छ होने पर विलों में रहने वाले मानव जव वाहर निकले और भूमि को हरी भरी देखी, तरुगणों को फूल फलों से लदे हुवे देखे तो वे हर्ष विभोर हो गए।

इस तरह यह प्रसंग चातुर्मास प्रारंभ से ४९ वें, ५० वें दिन के लगभग प्राप्त होता है।

आषाढ़ी पूर्णिमा के वाद का यह ४९वां, ५०वां दिन ज्ञानियों की दृष्टि में विशेष महत्व का विदित हुवा और आत्म शुद्धि के लिए संवत्सरी पर्व की आराधना चतुर्विध संघ के लिए निर्देशित हुई।

इसी आराधना को गणधरों ने एवं वाद के आचार्यों ने उपयुक्त समझा तथा आराधना करते आए। तदनुसार निर्ग्रंथ श्रमण संस्कृति के क्रांतिकारी उद्धारक पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. से लेकर आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. तक आराधना होती रही।

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. की उपस्थिति में ही अजमेर वृहत्साधु सम्मेलन वि. सं. १९९० में भी एतद्विषयक लम्बी चर्चाओं के पश्चात् यही निर्णय रहा कि चातुर्मास के प्रारंभ से ४९ वें ५० वें दिन संवत्सरी पर्व की आराधना की जाय।

तदनुसार आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. के पश्चात् भी पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की सम्प्रदाय सहित भारत की

प्राय: सभी स्थानकवासी बाईस सम्प्रदायें (एतिहासिक दृष्टि से साधुमार्गी परंपरा) आराधना करती रही। अजमेर सम्मेलन के समय एतद्विषयक निर्णय में सम्मिलित एकाध सम्प्रदाय बाद में ४९ वें, ५० वें दिन के अनुरूप आराधना करने में सक्षम नहीं हो पाई।

वृहत्साधु सम्मेलन सादड़ी में भी उक्त नियम की पुष्टि करते हुवे संगठन की दृष्टि से अल्प संख्यकों को मिलाने हेतु अत्यधिक बहुल पक्ष ने परिवर्तन कर भादवा की संवत्सरी रखी पर यह कहा गया कि "आगे गुजरात सौराष्ट्र आदि को सम्मिलित करते वक्त यदि संवत्सरी की आराधना में फेरफार करना पड़े याने ४९ वें, ५० वें दिन को करने का प्रसंग आवे तो अल्प संख्यक सहित समग्र संत सती वर्ग को ४९ वें, ५० वें दिन संवत्सरी करने में तत्पर रहना चाहिए।" आदि आशय के भावों को व्यक्त करते हुवे संवत्सरी का परिवर्तन हुवा।

(संवत्सरी से एक सप्ताह पूर्व इस पर्युषण पर्व का प्रारम्भ होता है। पर्युषण पर्व के अंतिम दिन हमारी साधना परिपूर्ण हों, इस दृष्टि से पूर्व के सात दिन साधना के अभ्यास के लिए पूर्वाचार्यों ने नियत किए हैं। इसे अष्टान्हिक पर्व भी कहते हैं।)

आठ ही दिनों तक मानने का कारण यह है कि यह आत्मा आठ प्रमाद (१ अज्ञान, २ संशय, ३ मिथ्याज्ञान, ४ राग, ५ द्वेष, ६ स्मृति भ्रन्श, ७, धर्म अनादर, ८ योग दुष्प्रणिधान प्रमाद) में फंसा हुवा, आठ मद (१ जाति, २ कुल, ३ बल, ४ रूप, ५ तप, ६ लाभ, ७ श्रुत, ८ ऐश्वर्यमद) के कारण आठ कर्म (१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७, गोत्र, ८ अन्तराय) से आवृत होकर अपनी

ज्ञानादि शक्तियों को मंद किए हुवे बैठा है। जब तक इन आठ कर्मों को दूर नहीं किया जाय, अपनी स्वभाव सिद्ध आत्मिक ज्योति जगमगा नहीं सकती। अतः इन आठ कर्मों से किनारा करने के लिए आठ प्रमाद त्याग कर आठ मदों से रहित होना आवश्यक है।

हम हर घड़ी हर समय आत्म शोधन नहीं कर सकते तो ज्ञानियों ने व्यवस्था दी है कि दूज, पंचमी अष्टमी एकादशी चतुर्दशी एवं पूर्णिमा अमावश्या इन १ माह के बारह दिनों में तो यह साधना करें ही। इन १२ दिनों का भी ज्ञानी जनों ने महात्म्य बतलाया है। राग द्वेष इन दो महान शत्रुओं को, जो मोह रुपी राजा के पुत्र हैं, इन्हें आत्मा से अलग करने के लिए–नष्ट करने के प्रतीक स्वरूप दूज को पर्वाराधना करनी चाहिए।

पांचवें ज्ञान केवल ज्ञान की आराधना का स्मरण कराने के लिए पंचमी नियत की गई है। अष्टमी की तिथि आठ कर्मों से मुक्त होने के लिए धर्म-आराधना की प्रेरक है। उपशम श्रेणी आरोहण करने वाली आत्मा ग्यारहवें गुण स्थान में पहुंचकर मोह कर्म, जो सभी कर्मों का राजा है, को उपशमाकर शांत प्रशांत स्थिति का अनुभव कराने के लिए एवं ग्यारह अंगों का अध्ययन करने के लिए एकादशी प्रेरणा देती है। चतुर्दशी से प्रेरणा मिलती है कि चौदहवें गुण–स्थान को प्राप्त किए बिना सिद्ध अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। पूर्णिमा का चंद्र आत्मा की निर्मलता प्रकट करने की प्रेरणा देता है। और अमावश्या की घोर अंधकार परिपूर्ण रात्रि इस बात की शिक्षा देती है कि अज्ञान रुपी अंधकार में भटकती हुई आत्मा का संसार परित्त नहीं होता है। अतः संसार के दुखों का अंत लाने के लिए धर्म की आराधना सहायक होती है।

ज्ञानी जनों का कथन है कि मोहनीय कर्म के प्रवल उदय से सांसारिक कार्यों में व्यस्त आत्माएं इन १२ दिनों में कदाचित् धर्म आराधना करने में समर्थ नहीं हो तो अष्टमी चतुर्दशी अमावस्या तथा पूर्णिमा इन ६ दिनों में आराधना करने की कोशिश करे। यह भी सम्भव न हो तो माह में दो चतुर्दशी की आराधना करते हुए वर्ष में २४ दिन, चौमासी पक्खी के ३ दिन और ये पर्यूषण के ८ दिन इस प्रकार ३५ दिन की आराधना तो करनी ही चाहिए। वह भी न हो सके तो चौमासी पक्खी के ३ दिन और पर्यूषण के ८ दिन इस प्रकार वर्ष में इन ग्यारह दिन की आराधना तो होनी चाहिए। वह भी सम्भव न हो तो आठ कर्मों से छुटकारा पाने के लिए इन आठ दिनों में तो प्रत्येक मानव को आत्म शोधन का प्रयास अवश्य ही करना चाहिए।

ये आठों ही दिन जैन परम्परा में अनमोल, आदर्श एवं महान बन गए हैं, क्योंकि आठ कर्मों का नाश होने से ही आठ आत्म गुण (१ अनंत ज्ञान २ अनंत दर्शन ३ अनंत सुख (निराबाध) ४ अनंत चारित्र ५ अटल अवगाहन ६ अमूर्तिक ७ अगुरु लघु ८ अनंत बलवीर्य) प्रकट होते हैं। आठ कर्मों का नाश करने के लिए ८ शिक्षाएं, आठ शील के गुण, आठ प्रवचन माता की आज्ञा से देवगुरु धर्म एवं पांच व्रत इन आठ का श्रद्धा पूर्वक आचरण करने के लिए अरिहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु साध्वी श्रावक और श्राविका इन आठ पदों की निकट सम्पर्कता सम्यक्त्व के आठ आचारों का निर्दोष पालन और आचार्य श्री की आठ सम्पदाओं के स्मरण रूप से इन आठ दिनों का महत्व स्वतः सिद्ध हो जाता है। प्रसंगोपात ८ शिक्षाएं, ८ शील के गुण आदि ऊपर बताए गए गुणों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराना आवश्यक प्रतीत होता है।

८ शिक्षाएं–१ शास्त्र की जिन वातों और सूत्रों को न सुना हो उन्हें सुनने के लिए उद्यमशील होना। २ सुने हुवे को हृदयंगम कर उनकी स्मृति को स्थाई वनाना। ३ संयम द्वारा पाप कर्म को रोकने का प्रयत्न करना। ४ तप द्वारा पूर्वोपाजित कर्मों की निर्जरा करते हुए आत्म विशुद्धि हेतु यत्न करना। ५, संघ में वात्सल्य भाव की वृद्धि करना। ६ चतुर्विध संघ को आचार-विचार ज्ञानादि सिखाना। ७ वृद्ध तपस्वी ग्लान रोगी की उत्साह पूर्वक व्यावच्च करना। ८ संघ में विरोध होने पर राग द्वेष रहित होकर अथवा आहार एवं शिष्यादि की अपेक्षा से रहित होकर निष्पक्षभाव से मध्यस्थ रहे और यह भावना रखे कि किसी तरह से स्वधर्मी आपस में असम्बद्ध प्रलाप और तू तू मैं मैं छोड़कर शांत स्थिर तथा आपस में प्रेमभाव वाले हों।

८ शीलगुण–१ हास्य क्रीड़ा न करे। २ इन्द्रियों को वश में रखने का अभ्यास करे। ३ दूसरे के दोष तथा मर्म को प्रकट न करे। ४ सदाचार का ध्यान रखे। ५ अनाचार का सेवन न करे। ६ रसना लोलुप न हो। ७ क्रोध से सदा दूर रहे। ८ सत्य वात को स्वीकार करने के लिए सदैव तैय्यार रहे।

८ योग–१ यम–अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह। २ नियम–शौच संतोष तप स्वाध्याय ईश्वर प्राणि–धान। ३ आसन–सुखपूर्वक स्थिर आसन। ४ प्राणयाम–श्वास प्रश्वास की गति विच्छेद। ५ प्रत्याहार इन्द्रियों को अन्तर्मुखी वनाना। ६ धारणा–चित्त को किसी ध्येय में स्थिर रखना। ७ ध्यान–धर्मध्यान–शुक्लध्यान की आराधना करना। ८ समाधि ध्यान का स्वरूप शून्य हो जाना।

आठ सम्यक्त्व के आचार–१ निःशंकित–वीतराग वाणी में संदेह न करना। २ निष्कांक्षित–परदर्शन की आकांक्षा न करना।

३ निर्वितिगिच्छा-धर्म फल की प्राप्ति के विषय में संदेह न करना। ४ अमूढ़ दृष्टि-विभिन्न दर्शनों की अर्थात् मत-मतान्तरों की युक्तियों को सुनकर और उनकी ऋद्धियों को देखकर अपनी श्रद्धा से विचलित न होना अथवा आडम्बर देखकर श्रद्धा को डांवाडोल न बनाना। ५ उपवृन्हण-गुणीजनों को देखकर उनकी प्रशंसा करना तथा स्वयं भी उन गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना अथवा अपनी आत्मा को अनंतगुण व शक्ति का भण्डार समझकर उसका अपमान अथवा उत्थापन नहीं करना उसे तुच्छहीन और निर्बल नहीं समझना। ६ स्थिरीकरण-अपने तथा दूसरे को धर्म से गिरते हुवे देखकर उपदेशादि द्वारा धर्म में स्थिर करना। ७ वात्सल्य-समान धर्म वालों से प्रेमभाव रखना। प्रभावना-सत्य धर्म की उन्नति तथा प्रचार के लिये प्रयत्न करना।

आठ सम्पदा–आचार सम्पदा २ श्रुत सम्पदा ३ शरीर सम्पदा ४ वचन सम्पदा ५ वाचना सम्पदा ६ मति सम्पदा ७ ७ प्रयोग मति सम्पदा ८ संग्रह परिज्ञा सम्पदा। आवश्यक निर्युक्ति एवं अन्य आगमों में यह भी बतलाया गया है कि इन पवित्र दिनों को महत्व देने के लिए स्वर्ग के देवता भी मध्यलोक के नंदीश्वर द्वीप आदि स्थानों में आकर अष्टान्हिका महोत्सव मनाते हैं।

मानव मात्र के लिए पर्वाधिराज पर्यूषण की आराधना दानों में अभयदान के समान श्रेष्ठ व महत्वपूर्ण है। इन दिनों में साधक व्रत तप नियम उपनियमों की सम्यक् आराधना करता है। वर्ष भर तक सांस्कृतिक एवं मोह मायावी प्रपंचों में उलझे हुवे मन को स्वस्थ एवं प्रशांत बनाने के लिए इससे श्रेष्ठ और कोई पर्व नहीं है। जैन समाज में यह पर्व संवत्सरी एवं हिन्दू

समाज में ऋषि पंचमी के नाम से जाना एवं मनाया जाता है। पर्व में इन आठ दिनों की अपनी एक खास विशेषता है जो इसे लोकोत्तर बनाती है। पर्व के प्रत्येक दिन में निश्चित एवं व्यवस्थित कार्यक्रम के अनुसार सारी साधना करने से उत्कृष्ट रसायन आने पर आत्मा परमात्म पद को प्राप्त करता है। इसके लिए होना चाहिए साधक की तल्लीनता एवं तन्मयता। इन आठ दिनों में क्या जानना क्या छोड़ना और क्या ग्रहण करना ? इसके सम्बन्ध में शास्त्रकार कहते हैं–कि सबसे पहले ८ प्रमाद और ८ मद को हटाकर ८ कर्मों को दूर करना है छोड़ना हैं। इन ८ कर्मों के नाश से आठ आत्म गुण प्रकट होते हैं इसकी निरन्तर स्मृति रखने के लिए साधना रूप आठ दिवस आवश्यक हैं।

इस प्रकार हेय उपादेय रूप इन आठ आठ कार्यों की पूर्ति एवं साधना के लिए इस मंगलमय पर्व के आठ दिवसों का शुभ आयोजन शास्त्र सम्मत है।

यही इस पर्व की ऐतिहासिक महत्ता है। अतः संवत्सरी का यह शुभ दिवस विश्व का मंगलमय दिवस स्वतः सिद्ध होता है।

अब प्रश्न होता है कि इन दिनों में यही अंतकृद्दशांग सूत्र का वांचन क्यों किया जाता है? प्रत्येक वर्ष इसी शास्त्र को कहने-सुनने से क्या मन ऊब नहीं जाता ?

उत्तर–इस सूत्र में उन ९० महान आत्माओं का इतिहास सुरक्षित है जिन्होंने अपने महान त्याग वैराग्य से आत्म साधना करके शाश्वत सुख को प्राप्त किया है। प्रतिवर्ष पर्यूषण पर्वा–

धिराज के इस मांगलिक प्रसंग पर इन महान आत्माओं के उत्तम चरित्र का पठन श्रवण एवं मनन करने से हृदय में शुद्ध भावों के संचार के साथ साथ उनकी महान साधना का अनु-मोदन होता है, जिससे कभी उक्त कार्य को स्वयं करने की प्रेरणा भी हो सकती है व कई आत्माएं यथाशक्ति इन पर्व दिनों में मन वचन काया से ज्ञान दर्शन चारित्र की सम्यक् आराधना करने के लिए प्रवृत हो जाती हैं ।

जिस प्रकार वही वही अर्थात् वैसा वैसा ही भोजन रोज रोज किया जाता है और त्यौहार के दिनों में उसी प्रकार का पक्वान्न प्रतिवर्ष बनाया जाता है, उसका उपयोग करने में ऊब नहीं आती एवं प्रतिदिन वैसे ही वैसे सूर्य का प्रकाश ग्रहण करने में जैसे ऊब नहीं आती वैसे ही पक्वान्न और सूर्य के समान आत्मिक आनंद देने वाले इस अंतकृद्दशांग सूत्र का बार-बार अध्ययन पठन एवं श्रवण मनन करने में और आत्मिक आनंद प्राप्त करने में ऊब नहीं आनी चाहिए। इस प्रकार से की जाने वाली यह आगम वाचना स्वात्मा की पवित्र पर्याय प्रकट करने में कारण बनती है। और वह वाचना ही स्वाध्याय-स्व + अध्ययन बन जाती है ।

(आठवां अंग श्री मदन्तकृद्दशाँग सूत्र प्रारम्भ—

जैनागमों में अंग सूत्रों को प्राथमिकता दी है इस आठवें अंग का नाम श्रीमदन्तकृद्दशांग इसलिए रखा गया है कि इस शास्त्र में संसार का अंत करने वाली ९० महान आत्माओं का द... अध्ययनों में वर्णन किया गया है।)

(उन्होंने कितनी ऋद्धि सम्पदा कुटुम्ब परिवार एवं स्त्र... का मोह छोड़कर किन उत्कृष्ट वैराग्यमयी भावनाओं से इस नश्व...

असार संसार का त्याग किया और ज्ञानदर्शन चारित्र की उत्कृष्ट आराधना कर अपना अंतिम समय सुधार लिया। सिद्ध बुद्ध मुक्त होकर शाश्वत सुख प्राप्त किया।

(बन्धुओं! आप के सामने इस अंतकृद्दशांग सूत्र के प्रथम वर्ग के १० अध्ययनों का वर्णन प्रस्तुत किया गया, जिनमें अंधकवृष्णि राजा की धारणी नाम की रानी से उत्पन्न गौतम आदि दस राजकुमारों ने किस प्रकार से प्राप्त ऋद्धि सिद्धि आदि का किस उत्कृष्ट भावना से त्याग कर सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र एवं तप की उत्कृष्ट आराधना कर शाश्वत सिद्ध अवस्था प्राप्त की। उनकी जीवन गाथाओं से हम सब को प्रेरणा मिलती है। वह दिन धन्य होगा जिस दिन हमारी भी आत्मा उनकी तरह उत्कृष्ट आराधक बनकर शाश्वत सिद्ध स्थान प्राप्त करेगी।)

सभी भाई बहन पर्वाराधना के सामान्य नियमों का प्रतिदिन पालन करते हुए इन आठ दिनों में कुछ नियम पूर्वक अभियान चलाकर मोक्ष मार्ग के ज्ञानादि की व्यवस्थित क्रम से आराधना करेंगे तो हमारी यह पर्यूषण पर्व की आराधना सफल होगी।

(आज प्रथम दिवस में हम यह प्रतिज्ञा कर जीवन पर्यन्त पालन करें–सप्त कुव्यसन का आजीवन त्याग–)

द्यूतं चमांसं च सुराच वैश्या, पापर्द्धि चौर्य परदार सेवा।
एतानि सप्त व्यसनानि लोके, घोराति घोरं नरकं नयंति॥

(बन्धुओं! यों तो व्यसन कई प्रकार के हो सकते हैं। पर मुख्य सात हैं जिनसे हमें सदा बचते रहना चाहिये। इनसे मानव परतंत्र बनकर नरकगामी बन जाता है। वे सात कुव्यसन ये हैं–

(१–जुआ–जीवन में भूलकर भी कभी जुआ नहीं खेलना चाहिये।

इससे धन का नाश तो होता है, दुनियां में बदनामी भी हो जाती है सट्टे करना, आंकडे लगाना, हार जीत करना यह सब जुआ ही है।

२- मांस भक्षण- अंडे एवं मांस आदि नहीं खाना चाहिये। इससे दया भाव नष्ट होकर मन में क्रूरता आती है।

३—मद्यपान- शराब नहीं पीना चाहिये इससे बुद्धि नष्ट हो जाती है। बिड़ी तथा सिगरेट भी नहीं पीना चाहिए। इससे भी केन्सर जैसी भयंकर बिमारी हो जाती है। मनुष्यों को रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए। पक्षी भी रात्रि में आहार नहीं करते हैं। वैदिक शास्त्रों में भी इसे बुरा कहा है।

मार्कंडेय ऋषि कहते है -

> अस्तंगते दिवानाथे, आपो रूधिर मुच्यते।
> अन्नमांस समं प्रोक्तं, मार्कंडेय महर्षिणा ॥

४- वैश्यागमन- वैश्यावृत्ति से तन और धन दोनों का विनाश होता हैं। दुनियां में अपयश फैलता है। अतः वैश्यागमन नहीं करना चाहिए।

५—शिकार करना-शिकार नहीं करना चाहिए। इससे निर्दोष प्राणियों की जान तो जाती ही है शिकार करने वाला दुर्गति में जाता है, मन में हिंसक वृत्ति पैदा होने से धर्म का नाश होता है।

६-चोरी करना-चोरी करने से जेल में जाकर घोर यातनाएं सहन करनी पड़ती है। धन और कीर्ति से तो हाथ धोना ही पड़ता है, कभी कभी जान भी चली जाती है। अतः चोरी नहीं करना चाहिए। दूसरे की वस्तु बिना पूछे उठाना भी एक तरह की चोरी है।

७—परस्त्री गमन : यह सातवां कुव्यसन है। इसके सेवन से जीवन बरबाद हो जाता है। पर स्त्री में आसक्त मनुष्य अपना सब कुछ गवां बैठता है। मर कर भी वह दुर्गति में जाता है। कहा भी है –

(धन धान्य गयो कछु नाहीं गयो, आरोग्य गयो कछु खों दीन्हो।
चारित्र गयो सर्वस्व गयो, जग जन्म अकारथ ही लीन्हो।

When wealth is lost nothing is lost –
When health is lost samething is lost -
When caractor is lost allthing is lost.

जो मनुष्य इन सात कुव्यसनों से बचकर रहता है वह इस लोक में भी सुखी रहता है और परलोक में भी दुर्गति से बच जाता है।)

ज्ञानाराधना—मोक्ष मार्ग के ४-४ अंग, ज्ञान दर्शन चारित्र और तप तथा दान शील तप और भाव की आराधना प्रतिदिन अभियान पूर्वक सम्पन्न करें।

आज का पूर्ण दिवस ज्ञान की आराधना में व्यतीत हो। सम्यक् प्रकार से की गई ज्ञान की आराधना जीवन का कल्याण कारक होगी। ज्ञानार्जन कर उसका मद-अहंकार नहीं करना चाहिए। उदासीन भी नहीं होना चाहिए। जिन आत्माओं ने ज्ञान की उपेक्षा की, उन्हें कैसे २ कर्म का बंध हुआ और पुनः ज्ञान की सम्यग् आराधना से उनके वे बंधे हुवे कर्म कैसे क्षय हुवे इस विषय में ज्ञान पंचमी की कथा प्रसिद्ध है। उसे ध्यान पूर्वक सुनकर यदि आप ज्ञान की आराधना में सतत जागरुक रहे तो अवश्य ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे ।

ज्ञान आराधना

ज्ञान पंचमी की कथा

वरदत्तकुमार

इसी जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में संसार-प्रसिद्ध पृथ्वी का भूषण, सुन्दर कोट-कंगुरों सहित अति रमणीय 'पद्मपुर' नामक एक नगर था। उसमें चार-बुद्धि का भंडार पुत्रवत् प्रजापालक, राज्य चिन्हों से सुशोभित गांभीर्य आदि गुणों से युक्त, शूरवीर महाधीर-महाराज "अजितसेन" राज्य करते थे। उस राजा की लावण्यादि शुभ लक्षणों से सम्पन्न धर्म का अवताररूप दान-मान सत्कार आदि कार्यों से प्रेम रखने वाली, पौषध उपवास आदि मोक्ष मार्ग के साधन रूप धार्मिक क्रियाओं को करने वाली मुख पर मुखवस्त्रिका धारण कर उभयकाल सामायिक प्रतिक्रमण आदि अनुष्ठान करके गृह कार्यों में प्रवृत्त होने वाली, प्रजाहित के कार्यों में योग्य सलाह देने वाली, श्राविका के व्रतों का समुचित रूप से आराधना करने वाली "यशोमति" नामक श्रमणोपासिका महारानी थी। उनके सर्वांग सुन्दर रूप लावण्यादि राज्य चिन्हों से युक्त 'वरदत्त' नामक एक राजकुमार था। आठवें वर्ष में प्रवेश करने पर महाराजा अजितसेन ने उसे ७२ कलाओं का ज्ञानार्जन करने के लिये कलाचार्य के पास भेजा।

पंडितजी ने भी कठिन परिश्रम से उस राजकुमार को ग्रन्थों का सारभूतज्ञान पढ़ाना आरम्भ कर दिया। परन्तु उस कुमार के मुख से एक अक्षर का भी सम्यक् रीति से उच्चारण नहीं होने लगा। तब शास्त्र आदि पढ़ाने की तो बात ही क्या? बुद्धि की मूढ़ता के कारण वह योग्य शिक्षा प्राप्त न कर सका।

यौवन-अवस्था में प्रवेश करते ही राजकुमार वरदत्त के शरीर में अनेक प्रकार के रोगों के साथ भयंकर कुष्ठरोग व्याप्त हो गया। इससे उसका बाह्य सौन्दर्य नष्ट हो गया। ज्ञान के अभाव से उसका आन्तरिक सौन्दर्य नष्ट प्रायः ही था। महाराजा ने राजकुमार के उपचार में कोई कमी नहीं रखी। लाखों की सम्पत्ति खर्च करने पर भी देश-विदेश के प्रसिद्ध वैद्य उसके रोग को मिटाने में सफल नहीं हो सके। वह अपने ही अशुभ कर्मों का फल भोग रहा था।

गुणमंजरी:--

उसी नगर में श्रावक-गुणों से युक्त, १४ नियमों का प्रतिदिन प्रत्याख्यान करने वाला, नवतत्व ६ द्रव्य का जानकार, १२ व्रतों का धारक, १४ प्रकार का शुद्ध दान करने वाला चारों तीर्थ रूप श्री संघ का हित करने वाला, मुख वस्त्रिका धारण कर त्रिकाल-शुद्ध चित्त से धार्मिक अनुष्ठान करने वाला, शास्त्र-विशारद 'सिंहदास' नामक धनाढ्य सेठ रहता था। उस सेठ के रूप-लावण्यादि गुणों से युक्त स्त्रियोचित सर्व गुण-सम्पन्न 'कर्पूर-तिलका' नाम की, धार्मिक क्रियाओं को करने वाली श्रमणोपासिका धर्मपत्नि थी। वे दोनों जिन-धर्म की उपासना में संलग्न रहते थे। उनकी रूप-लावण्य से सम्पन्न 'गुणमंजरी' नामक सर्वांग सुन्दर कन्या थी। उस कन्या का माता-पिता ने बड़े ही प्रेम से लालन-पालन किया। यौवन-अवस्था प्राप्त होने पर पूर्वोपार्जित-अशुभ कर्मों के उदय से उस कन्या का भी शरीर अनेक रोगों से व्याप्त हो गया और वह गूंगी हो गई। अनेक प्रकार के योग्य उपचार करने पर भी वह कन्या रोग से मुक्त नहीं हो सकी। इस कारण उसके माता-पिता, भाई बहिन, मामा-मामी आदि सारा परिवार दुःखी हो गया किन्तु कर्म (भाग्य) के आगे क्या किया जा सकता है ?

एक समय उस नगर में जैन-धर्म के प्रचारक धर्म-नायक, धर्म-दिवाकर, तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए, चार ज्ञान के धारक, अनेकों शिष्यों के परिवार सहित "श्री विजयसेन नाम के आचार्य" पधारे। स्नान-मंजन आदि कार्यों से निवृत्त होकर समस्त नगर-निवासी वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर अपने-अपने परिवारों के साथ गुरु महाराज के दर्शनार्थ गये।

सिंहदास सेठ एवं महाराजा अजितसेन भी अपने-अपने परिवार एवं पुर-जन सहित बड़ी प्रसन्नता से आचार्य-महाराज की सेवा में उपस्थित हुए। उपस्थित समुदाय ने तिक्खुत्तो के पाठ से आचार्य महाराज एवं उनके सभी शिष्यों को विधि-पूर्वक वंदन-नमस्कार किया और सेवा में बैठ गये। उस समय आचार्य श्रीजी ने उपस्थित–जनमेदनी को प्रभावशाली उपदेश इस प्रकार दिया :—

हे भव्य जीवो ! हम ज्ञान के बिना जीव-अजीव आदि किसी भी तत्व को नहीं जान सकते हैं। ज्ञान बिना धर्म-अधर्म हित-अहित, कर्तव्य-अकर्तव्य भाष्य-अभाष्य भक्ष्य-अभक्ष्य आदि का भी विवेक नहीं हो सकता है। नर्क–स्वर्ग का, सुगुरु–कुगुरु का भी ज्ञान नहीं कर सकते हैं और ज्ञान के बिना स्वर्ग–अपवर्ग का भी बोध नहीं किया जा सकता है। अतः सभी सुखों का दाता 'ज्ञान' ही है। कहा भी है—"कल्पवृक्ष और कामधेनु भी ज्ञान की तुलना नहीं कर सकते। काम कुम्भ और चिंतामणि रत्न भी ज्ञान की समानता में नहीं ठहर सकते हैं।" जैन–आगमों में स्पष्ट रूप से कहा है कि—"ज्ञान और क्रिया की सम्यग्-आराधना से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।" श्रुति में भी कहा है कि— "विना–ज्ञान के मुक्ति नहीं," दया भी नहीं होती है। सुपथ और

कुपथ का बोध भी नहीं हो पाता है। अतः मनुष्यों को सर्व-प्रथम ज्ञान की आराधना करना हो आवश्यक है। कभी भी ज्ञान और ज्ञानियों की निन्दा व अवहेलना नहीं करनी चाहिये। मन, वचन और काया से ज्ञान और ज्ञानियों की विराधना और आशातना भी नहीं करना चाहिये। " ज्ञान की विराधना " से मन शून्य हो जाता है। गूंगापन और मुख का रोग हो जाता है। शारीरिक व्याधियाँ और अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। धन-धान्य, पुत्र कलत्र (स्त्री) आदि का भी नाश हो जाता है।"

उपदेश के समय सेठ सिंहदास ने आचार्य श्रीजी से निवेदन किया कि—"हे भगवान् ! मेरी पुत्री गुणमंजरी ने पूर्व-भव में न जाने किन अशुभ कर्मों का आचरण किया, जिसके प्रभाव से उसके सुन्दर और मनोहर शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो गये हैं।" तब आचार्य श्रीजी ने उस सभा को गुणमंजरी के पूर्व-भव का वृत्तांत निम्न प्रकार से सुनाया—

"घातकी खण्ड-द्वीप की पूर्व दिशा में भरत खेटक नामक नगर था, जिसमें जिनदास-नामक सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुर सुन्दरी था। उसके पांच पुत्र और चार कन्याएं थी। जिनदास सेठ ने अपने पुत्रों को कलाचार्य के पास विद्या-ध्ययन हेतु भेजा, किन्तु वे पांचों भाई रूप और धन में उन्मत्त वने हुए वालक्रीड़ा में आसक्त रहने लगे। जव अध्यापक ने भली प्रकार से पढ़ने के लिये उन पांचों भाइयों को कठोर वचन एवं लकड़ी आदि से दंडित किया, तव पांचों भाई रोते-चिल्लाते हुए माता के पास गये, और उससे अध्यापकजी के उक्त-कार्य की शिकायत की। यह सुन माता पुत्रों से कहने लगी कि "हे पुत्रों ! पढ़ने में क्या रखा है ? जो पढ़ता है वह भी मरता है और जो नहीं पढ़ता है, वह भी मरता है। अतः पढ़ने की झंझट में क्यों

पढ़ते हो, पढ़ने से कोई लाभ नहीं है। इस प्रकार अपने पुत्रों को संतुष्ट कर अध्यापकजी की बुराई करने लगी और पुस्तक, स्लेट, पट्टी, पोथी आदि पढ़ने की सामग्री को अग्नि में जलाकर उसने पुत्रों से कहा कि "अब तुम पढ़ने मत जाओ।" आनंद से खेलो कूदो और पंडितजी अब तुम्हें कभी कहें, तो उन्हें तुम पत्थरों से मारना। वे उसी प्रकार करने लगे। जिनदास सेठ ने अत्यन्त मधुर शब्दों से पुत्रों को हित शिक्षा देकर पढ़ने की प्रेरणा दी, किन्तु वह निष्फल गई। पुत्रों ने पिता की अपेक्षा माता के वचनों को आनंद-दायक माना और उस दिन से वे बड़ी खुशी से खेलने-कूदने लगे। तब सेठ ने अपनी पत्नी से कहा कि "हे प्रिये, विद्या के बिना इन्हें कोई भी अपनी कन्या नहीं देगा, क्योंकि नीति शास्त्र में कहा है कि–"विद्या से लक्ष्मी प्राप्त होती है," "विद्या से उत्तम स्त्री मिलती हैं, विद्या से कीर्ति और अव्यय सुख की प्राप्ति होती है"। यह सुनकर सुर सुन्दरी ने कहा-हे स्वामी ? यह तो आप ही जानते हैं, मैं इस विषय में कुछ भी नहीं जानती हूं। मैं स्वयं ही अनपढ़ हूं। यह सुनकर सेठ ने मौन धारण किया। पढ़े हुए शास्त्रों का पठन और मनन करने लगा। प्राप्त-सम्पत्ति का सद्कार्यों में व्यय करने लगा। स्वजन, परजन, गरीब, मूक, पंगु, अंधे आदि को दान करने लगा। शाला और विद्यार्थियों की सहायतार्थ धन का दान करने लगा। नित्य-प्रति धर्म-आराधना करते हुए सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगा। सेठ के निरक्षर पांचों पुत्र क्रम से युवावस्था को प्राप्त हुए, किन्तु कोई भी उन मूर्खों को अपनी कन्या देने तत्पर नहीं हुआ। वे जानते थे कि "मूर्ख पाणिग्रहण के योग्य नहीं होते हैं।" तब सेठ ने अपनी पत्नी से कहा- कि-हे मूर्खे तेरे दोष से ही ये पुत्र मूर्ख रह गये हैं, तूने इनको सारी पाठ्य सामग्री जला दी थी। यह कार्य तुमने ठीक नहीं किया। सेठानी

ने कहा "इसमें मेरा कुछ भी दोष नहीं है, सारा दोष तुम्हारा ही है। सेठ ने कहा हे, पापिनी ! हे दुष्टे ! तू स्वयं दोष करके, मुझे ही दोषी ठहराती है।

तव सेठानी ने कहा-"तुम्हारे पिता ही पापी थे, जिन्होंने तुम्हें ऐसी शिक्षा दी है।" इस प्रकार के पत्नी के वचन सुनकर सेठ क्रोधित हो गया। पत्नी को पत्थरों से प्रहार करने लगा, जिससे वह मर गई और वही तुम्हारे यहाँ 'गुणमंजरी' नामक पुत्री हुई है। पूर्व-भव में ज्ञान और ज्ञानी की विराधना करने से और अपने पति का अपमान करने से इसके शरीर में असाध्य रोगों की उत्पत्ति हुई है। गुणमंजरी ने आचार्यश्रीजी के इस प्रकार के वचनों को सुना तो उसे पूर्व-जन्म को बतलाने वाला 'जाति-स्मरण ज्ञान' हो गया। उसने आचार्यश्रीजी की प्रशंसा करते हुए 'रोग-मुक्ति' का उपाय पूछा।

आचार्य श्रीजी ने इस प्रकार कहा हे देवानुप्रिये ! "पढमं नाणं तओ दया" इस शास्त्रीय उक्ति के अनुसार सबसे पहले ज्ञान की भक्ति करना चाहिये।

ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय करने के लिये "ज्ञान पंचमी-तप" की आराधना करनी चाहिये। वह इस प्रकार है— "कार्तिक शुक्ला पंचमी से प्रारम्भ करके प्रत्येक महिने की शुक्ल-पंचमी को उपवास-व्रत धारण कर उस दिन पांच लोगस्स का कायोत्सर्ग करना चाहिए। पांच फलों का त्याग करना चाहिए, गुरु-दर्शन कर पौषधोपवास पूर्वक उभय काल प्रतिक्रमण करना चाहिये "ॐ ह्रीं श्रीं नमो नाणस्स" की २१ माला जपना चाहिए। इस प्रकार पाँच वर्ष पाँच महिना तक करते हुए समाप्ति के दिन सामायिक के उपकरणों के पाँच सेटों की प्रभावना करनी

चाहिये। यदि प्रत्येक महिने की शुक्ल पंचमी को व्रत की आराधना न हो सके तो जीवन पर्यन्त वर्ष में एक वार कार्तिक शुक्ला पंचमी को यह साधना अवश्य करनी चाहिये। ऐसा करने से सब रोगों का नाश एवं सभी उपद्रवों की शान्ति होती है। रूप-लावण्य की प्राप्ति होती है। ऋद्धि सिद्धि प्राप्त होती है। कौटुम्बिक-जन प्रसन्न रहते हैं, मतिज्ञानादि निर्मल होते हैं। इस प्रकार गुरु महाराज के दिये हुए उपदेशों को सहर्ष स्वीकार किया।

उस समय अजितसेन ने भी आचार्यश्रीजी के चरणों में सविधि वन्दना नमस्कार कर निवेदन किया कि-हे भगवन्! यह मेरा पुत्र वरदत्तकुमार भी यौवन अवस्था प्राप्त होने पर महान् व्याधियों से दुखित हो गया है और अनेक प्रयत्न करने पर भी इसे विद्या प्राप्त नहीं हो सकी है। इसका क्या कारण है? तब आचार्यश्रीजी ने वरदत्तकुमार के पूर्वजन्म की कथा सुनाई।

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में श्रीपुर नाम का ऋद्धि-सिद्धि से समृद्ध नगर था। वहां वसु नामक एक श्रेष्ठि निवास करते थे। उनके वसुसार और वसुदेव नामक दो पुत्र थे। एक दिन वन में क्रीड़ा करते समय उन्होंने सुन्दराचार्य नामक महात्मा को देखा। विधि-पूर्वक वन्दन-नमन कर वे दोनों मुनिराज की सेवा में बैठ गये। मुनिराज के उपदेश से दोनों भाई संसार से विरक्त हो गये और माता-पिता की अनुमति प्राप्त कर दीक्षा धारण कर ली। छोटे भाई वसुदेव ने प्रमादादि अशुभ योगों का त्याग कर विनयादि गुणों से गुरू भक्तिकर द्वादशांगशास्त्रों के सुन्दर अर्थ का अध्ययन किया और अथक परिश्रम पूर्वक पांडित्य प्राप्त किया। आचार्यश्रीजी ने उसे सर्वगुण-सम्पन्न जानकर आचार्य पद से विभूषित कर ५०० शिष्यों के साथ देश-विदेश में

धर्म-प्रचारार्थ भेज दिया। एक समय किसी गांव में रात्रि को सोने के वाद एक साधु ने उठकर आचार्यजी से प्रश्नों का समाधान प्राप्त किया। थोड़ी देर वाद दूसरा साधु उठकर उन सोये हुए आचार्यश्री को जगाकर प्रश्न पूछने लगा। आचार्यश्रीजी ने उसका भी शास्त्रानुसार समुचित समाधान किया। इस प्रकार अनेक साधुओं ने प्रश्न किये। आचार्यश्रीजी ने उन सभी का शास्त्रानुसार समुचित समाधान किया।

इस तरह के परिश्रम से थककर आचार्य श्रीजी ने मन में विचार किया–"यह आचार्य पद ही उपाधि रुप है। मैंने किस अशुभ कर्म के फल-स्वरुप इस पद की प्राप्ति की है। मेरे से तो वड़े भाई सुखी है, जो अल्पज्ञ हैं, जिससे उनके पास कोई भी प्रश्न पूछने नहीं जाते हैं। वे सुख की नींद सो रहे हैं। मूर्ख पन में बहुत गुण हैं। नीति में कहा है कि—हे मित्र, मुझे तो मूर्ख रहना ही अच्छा लगता है, क्योंकि मूर्खपन में आठ गुण हैं— १. निश्चिंतता २. बहुमौजी, ३. सुखमौजी, ४. रात-दिन सोने वाला, ५. कार्य अकार्य बिना विचारे करने वाला, ६. मानापमान में समानता ७. हितकारी कार्य से रहित, ८. दृढ़ शरीर वाला। इस प्रकार आठ गुणों (अवगुणों) से युक्त मूर्ख सुख से समय बिताता है ज्यादा पढ़ना भी सुखकारी नहीं होता है। क्योंकि "अति सर्वत्र वर्जयेत्" इस आप्त वाक्य से मैं अब किसी की शंका का समाधान नहीं करूंगा। ऐसी प्रतिज्ञा धारण करके वसुदेव आचार्य ने मौन धारण कर लिया। फिर कुछ समय वाद ज्ञान की आशातना-रुप पाप का प्रायश्चित किये विना ही वह आचार्य कालधर्म को प्राप्त हो गये, और मानसरोवर के पास अटवीं में हंस बने। पूर्वोपार्जित कर्म से वहां भी उन्हें गूंगापन प्राप्त हुआ। वहां से मरकर वह यहाँ तुम्हारा 'वरदत्त' नामक पुत्र हुआ। पूर्वोपार्जित अशुभ

कर्म के उदय से यहाँ यौवन-अवस्था प्राप्त होने पर उसका सारा शरीर रोग से ग्रस्त हो गया है और विद्योपार्जन भी नहीं कर सका है ।

गुरु महाराज के उपदेश से वरदत्त कुमार को पूर्व-जन्म को बतलानें वाला 'जाति-स्मरण-ज्ञान' हो गया। पूर्व-जन्म के सारे वृत्तांत को जानकर वरदत्त कुमार ने विनय एवं नम्रता पूर्वक गुरु महाराज के चरणों में वन्दन नमस्कार कर पूछा कि-"हे भगवन् ! मेरे ये रोग कैसे नष्ट होंगे" ? तब गुरुजी ने उत्तर दिया कि— "जो कोई मनुष्य विशुद्ध निर्मल भाव से प्रत्येक महीने की शुक्ल पंचमी को उपवास या आयंबिल करता है, वह सुख-सम्पत्ति प्राप्त करता है।" वरदत्त कुमार ने कहा कि—"हें भगवन् ! मैं आपके कथनानुसार तप करने में समर्थ नहीं हूं। अतः मेरी शक्ति के अनुसार कोई अन्य उपाय बतलाइये।" तव गुरुजी ने कहा— "हे माहभाग, जो मनुष्य कार्तिक शुक्ल पंचमी को जीवन-पर्यंत उपवास करता है—वह सुखी हो जाता है।" तब वरदत्त कुमार ने आजीवन कार्तिक शुक्ला ५ का व्रत ग्रहण किया। राजा के अंतेपुर और सभा के सदस्यों ने भी कार्तिक शुक्ल पंचमी का व्रत ग्रहण किया। बाद में महाराजा व सारी (शेष) परिषद् मुनि-राज को वंदन नमस्कार कर अपने अपने घर लौट गई और व्रत की निर्मल आराधना करने लगी । उस तप के प्रभाव से वरदत्तकुमार का शरीर रोग मुक्त होकर अतीव सुन्दर बन गया। व्रत की सम्यक् आराधना से गुण मंजरी की सभी व्याधियां नष्ट हो गई; उसका सौंदर्य खिल उठा। जैन-धर्मानुरागी जिनचंद्र नामक श्रेष्ठी पुत्र ने उसके साथ विवाह किया और सुख-पूर्वक रहने लगे।

एक समय उसी नगर में धर्मघोष नामक आचार्य पधारे उनके उपदेशों से वरदत्तकुमार और गुणमंजरी विरक्त हो गये दीक्षा धारण कर अनेक वर्षों तक संयम पालकर वैजयंत विमा में वे दोनों देव बन गये। वहाँ से वरदत्तकुमार का जीव आ पूर्ण कर पुष्कलावती विजय के पुण्डरीक नगर में अमरसेन राज की गुणवती रानी के गर्भ से पुत्र-रूप में उत्पन्न हुआ, यहाँ उसक नाम सूरसेन रखा गया। यथा योग्य विद्योपार्जन कर कालांत में सूरसेन राजा बना। सैंकड़ों कन्याओं के साथ विवाह कर सूरसेन महाराज ने दस हजार वर्ष तक राज्य किया और श्री सीमंधर स्वामी के उपदेश से दीक्षा धारण कर केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये।

'गुणमंजरी का जीव भी देवलोक की आयु पूर्ण कर 'रमणीय विजय' में महाशुभानगरी के महाराजा अमरसिंह की महाराणी अमरवती की कुक्षी से उत्पन्न सुग्रीव कुमार नामक पुत्र युवावस्था में हजारों राज-कन्याओं के साथ विवाहित हुए। कालांतर में राजा वने। वहुत वर्षों तक राज्य सुख भोग कर संतों के उपदेश से विरक्त होकर पुत्र का राजतिलक कर दीक्षा लेकर संयम की उत्कृष्ट आराधना कर केवली पर्याय पालन कर मोक्ष पधारे।

उपसंहार :-

इसी प्रकार अन्य जो भी भव भीरू आत्मा पूर्वोक्त तप अंगीकार कर विधिपूर्वक पालन करेंगे वे इसलोक तथा परलोक में सकल सुख सम्पत्ति सौभाग्य प्राप्त करेंगे और अंत में केवल ज्ञान प्राप्त कर सिद्ध वुद्ध और मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त करेंगे अतएव भव्य प्राणियों को ज्ञान पंचमी की आराधना अवश्य करनी चाहिए।

पर्यूषण संदेश

द्वितीय दिवस—दर्शनाराधना—

आए पर्व पर्यूषण प्यारे, हिलमिल के मनाओ सारे।
यह जो पर्व पर्यूषण हैं ये सब पर्वों से न्यारे ॥ आए ॥
पर्व आए मुक्ति दिलाने को, हाँ जीवन ज्योति जगाने को ॥
जो पापों को दूर करे वही, पूर्ण पर्व का सार लहे ॥
जहां मनाते पर्व पर्यूषण होते कर्म से न्यारे ॥ आए ॥
पाप कषाय का ताप हरे, भव-रोग से जीवन मुक्त करे।
जो जीवन को मुक्त करे, वह केवल ज्ञान को प्राप्त करे ॥
यह जो पर्व अनुपम हैं, उनको मनाते सारे ॥ आए ॥
आओ मिलके लगाये नारा, हमें अहिंसा सत्य है प्यारा।
मेल मिलावें, प्रेम बढ़ावें, मैत्री भाव को आज जगावें ॥
क्षमा धैर्यता से मिलकर हम अपना काज संवारें ॥ आए ॥
महावीर ने इसे मनाया, अरिहंत ने इसके गुण गाया।
भाव-भरा यह पर्व अनोखा इसका काम सभी ने देखा ॥
समता सागर नाना गुरु, भक्तों का काज संवारें ॥ आए ॥

बन्धुओं ! कल आपके सामने अंतगढ़ सूत्र के प्रथम वर्ग के दस अध्ययनों का वर्णन आया। अब जंबू स्वामी अपने गुरु सुधर्मा स्वामी से इसी अंतगढ़ सूत्र के दूसरे अध्ययन के विषय में प्रश्न करते हैं। शास्त्र-वाचन पृष्ठ १७ से पृष्ठ ३६ तक।

बन्धुओं ! आज आपके समक्ष अंतगढ़ दशा सूत्र के दूसरे वर्ग में उन्हीं अंधकवृष्णि राजा की धारणी नाम की रानी से उत्पन्न अक्षोभ आदि ८ भाइयों का तथा तीसरे वर्ग के तेरह अध्ययनों में से ८ वें अध्ययन का वर्णन चल रहा है। अब वह

देवकीरानी भगवान से अपने मानसिक विचारों का कौ समाधान प्राप्त करती है, और आगे क्या दृश्य उपस्थित होता है उसका वर्णन समय पर आपके सामने आ सकता है। आज द्वितीय दिवस के प्रसंग से सम्यक्त्व का स्वरूप और धर्म स्थानक में प्रवेश करने के पांच शास्त्रीय-अभिगमों के वर्णन करने का प्रसंग है ।

"अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥

"जीवन पर्यंत अरिहंत भगवान ही मेरे देव हैं। पाँच महाव्रतधारी सुसाधु मेरे गुरु हैं, और जिनेश्वर-प्ररुपित तत्त्व ही मेरा धर्म है। यह सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है । और भी कहा है—

देव वही जो अरिहंत हो, गुरु वही जो निग्रंथ हो ।
धर्म वही जो अटल अमर हो,शास्त्र वही जो जिनभाषित हो ॥
जिस प्राणी की नस नस में यह अचल भरी श्रद्धान,
उसीको मिलता है निर्वाण ॥१॥ समयग्ज्ञानी सम्यग्दर्शी-

अरिहंत शब्द सर्वज्ञ—केवलज्ञानी का द्योतक है । इस शब्द में अरिहंत और सिद्ध दोनों का ग्रहण हो जाता है। ये दोनों ही आराध्य देव हैं । इनके सिवाय देव कहलाने वाले जो अरिहंत और सिद्ध के गुणों से रहित हैं वे मुझे मेरी आत्मा को कल्याण का मार्ग दिखलाने में समर्थ नहीं हैं। ऐसी दृढ़ श्रद्धा रखना। सुसाधु-निग्रंथ शब्द में आचार्य-उपाध्याय साधु इन तीन पदों का समावेश हो जाता है। इन तीन पदों के धारक ही मेरे परम आराध्य गुरु हैं। इनके सिवाय गुरु नाम धराने वाले जो आचार्य उपाध्याय एवम् साधु—साध्वी के गुणों से

रहित हैं, मेरे कल्याण का पथ प्रदर्शन करने में असमर्थ हैं। ऐसी मज़बूत धारणा रखना। और केवली-सर्वज्ञ भगवान द्वारा उपदिष्ट-अहिंसा-दया-मूलक धर्म है, और उन्हीं केवली-भगवान की वाणी, जिन ग्रंथों में सुरक्षित हो, वही वास्तविक शास्त्र और धर्म-ग्रन्थ हैं। ऐसी अटल श्रद्धा रखना ही सम्यक्त्व का लक्षण है।

वास्तविक शान्ति के धाम रूप मोक्ष का मूल, धर्म की आधारशिला "सम्यग्दर्शन" ही है। भक्त से भगवान एवं सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होने का आदि कारण यही है। उसके प्राप्त होने पर ही व्रत, नियम, तप-जप, सार्थक होते हैं। बिना सम्यग्दर्शन के पढ़ी हुई विद्या, पाया हुआ ज्ञान, अज्ञान रूप ही रहता हैं। इसके अभाव में की हुई कठिन तपस्याएं, पाला हुआ संयम आत्म-साधक नहीं है। एक भी जन्म-मरण कम नहीं कर सकता। भव-भ्रमण बढ़ता ही रहता है और भी कहा है-

"जीव तत्त्व है जड़ से निराला, पुण्य शुभ्र है पाप है काला।
संवर बांध है आश्रव नाला, बंध बंध निर्जरा उजाला॥
मोक्ष मुक्ति है, यों जो हो इन नव तत्त्वों का ज्ञान-
उसीको मिलता है निर्वाण॥ उसीको॥

जीवाइ नव पयत्थे जो जाणइ तस्स होइ समत्तं।
भावेण सद्दहंतो अयाणमाणे वि सम्मत्तं॥

जीवादि नव तत्वों का जिसे सम्यक् प्रकार से ज्ञान हो जाता वह 'सम्यत्क्वी' कहलाता है।

यहां प्रश्न होता है कि "सभी की बुद्धि एक समान नहीं होती तो क्या मंद बुद्धि वाला "सम्यक्त्वी" नहीं हो सकता है?

इसके उत्तर में शास्त्रकार कहते हैं कि "ऐसी बात नहीं है, वह मंद बुद्धिवाला व्यक्ति इन नव तत्त्वों के स्वरुप को समझ नहीं पाता, फिर भी यदि वह सर्वज्ञ कथित वाणी पर श्रद्धा करता है, तो वह नहीं जानता हुआ भी सम्यक्त्वी है"।

श्रद्धा का कितना महत्व है, कहा है—

श्रद्धा है सार धार, श्रद्धा ही से खेवो पार ।
श्रद्धा विन जीव ख्वार, निश्चय कर मानी है ॥

एकबार भी अल्प समय के लिये जिसे इस प्रकार की श्रद्धा स्पर्श हो गई उसका संसार परित्त याने कम हो जाता है कहा भी है—

अंतोमुहुत्तमितंपि फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं ।
तेसिं अवड्ढ पुग्गल परिअट्टो चेव संसारो ॥

धर्म स्थान में प्रवेश करने के नियमों को अभिगम कहते हैं ये अभिगम पांच हैं । शास्त्रीय अभिगम बतलाने के पहले प्रचलित कलियुगी अभिगमों का दिग्दर्शन कराना अप्रासंगिक न होगा ।

पढ़े-लिखे समझदार व्यक्तियों द्वारा आचरित पांच अभिगम ये हैं :—

"प्रथम करे पेशाव उपासरा आगल आवी ।
पेश वारणा मांहि नाक छिनके मन भावी ॥
पुनि भिष्टा खरड़ेल खालड़ा सामा राखे ।
वंदन करी त्रिगत उघाड़े मूंडे भाखे ॥
खोला मा माथो मुकी मुख थी मांगे मुनि मया ।
पांच अभिगम साचवे श्रावक वहू समझू थया ॥

इस पद्य का सरल अर्थ तो आप समझ ही गये होंगे आजकल वंदना भी किस प्रकार की जाती है ? जैसे महाराज पर कुछ अहसान कर रहे हों।

संत-सतियां आपके वंदन के भूखे नहीं हैं कि-"आप वंदना करोगे तो महाराज खुश होंगे, नहीं करोगे तो कहीं नाराज न हो जाय।"

बन्धुओं! वंदना का शास्त्रकारों ने महान महत्त्व बतलाया है। उत्तराध्ययन सूत्र के २९ वें सम्यक्त्व पराक्रम नामक अध्ययन में भगवान से प्रश्न पूछने पर भगवान ने कहा कि-"वंदना करने से नम्रता का गुण प्राप्त होता है, वात्सल्यता बढ़ती है और कर्मों की निर्जरा होती है।"

श्रेणिक महाराज ने छोटे से लेकर बड़े तक सभी साधुओं को निष्काम भाव से विधिपूर्वक वंदना की। वंदना करते-करते जब वे भगवान महावीर के निकट पहुँचे तब भगवान ने कहा- "श्रेणिक! आज तुमने वंदना करते-करते सात नारकी के कर्म दलिकों में से ६ नरक के दलिकों को नष्ट कर दिये। अब एक नरक के दलिक शेष रह गये हैं।" तब श्रेणिक महाराज ने कहा कि-"वंदना करने से जब छह नरक के दलिक नष्ट हो गये तो अब पुनः वन्दना कर एक नरक के दलिक को भी नष्ट कर दूं" तब भगवान ने कहा कि-"अब वह बात नहीं रही पहले तुम्हारे मन में बदले की भावना नहीं थी अतः निर्जरा अधिक हुई अब बदले की भावना उत्पन्न हो गई अतः अब वह लाभ नहीं हो सकता।" यह निष्काम वंदना का महत्व।

हाँ शास्त्रकारों ने पांच प्रकार के अभिगम धर्म स्थान में प्रवेश करने के बताये हैं:-

१ सचित वस्तु का त्याग—

धर्म स्थान में प्रवेश करने से पूर्व यदि अपने पास किसी प्रकार की सचित वस्तु जैसे, हरी शाक भाजी फल-फूल आदि, इलायची, अनाज के दाने आदि हों, तो उन्हें अलग रख देना चाहिये।

[२] अचित्त का विवेक—

जूते मोजे, टोप, लकड़ी, तलवार छड़ी आदि जो अभिमान सूचक वस्तुएं हैं, उन्हें भी यथा स्थान अलग रखना चाहिये।

[३] उत्तरासंग-धारण—

धर्म स्थान में प्रवेश करने के पूर्व मुख पर मुखवस्त्रिका या उत्तरासंग धारण कर लेना चाहिये।

[४] दृष्टि-वंदन—

संत सतियांजी महाराज पर दृष्टि पड़ते ही दोनों हाथ जोड़कर "मत्थेण वंदामि" कहते हुए झुकते हुए आगे बढ़ना।

[५] विधिपूर्वक वंदन—

पास आकर न अति निकट और न अति दूर अर्थात् संत-सतियाँ जहां विराजमान हों उनके सम्मुख उनसे ३॥ हाथ दूर खड़े रहकर तिक्खुत्तो के पाठ से तीन वार आवर्त्त देते हुए घुटने टेककर विधि-पूर्वक वंदन कर धर्मोपदेश श्रवण करना प्रश्न पूछना एवं तात्विक तथा धार्मिक, सामाजिक, उत्थान हेतु जानकारी करना चाहिये। प्रत्येक प्रश्न पूछने से पहिले तीन वार वंदन कर खड़े होकर कहना— "भगवन् ! मेरे प्रश्न हैं, कृपया उनका समाधान करने का कष्ट करें"। जब तक पूर्ण समाधन न

हो, पुनः पुनः पूछकर समाधान प्राप्त हो जाने पर कहना–"आपने वड़ी कृपा की–आपने मेरे प्रश्न को भली प्रकार से समझाया।"

इस प्रकार धर्म स्थान के ये पांच मुख्य नियम है–जिन्हें 'अभिगम' कहते हैं। इनका ज्ञान प्रत्येक भाई-वहिन, वालक-वालिकाओं को होना ही चाहिये। ज्ञान प्राप्त कर आचरण में लाने की महती आवश्यकता है। हमारे भाई गिरजाघर, मस्जिद, मन्दिर में जाते हैं तो वहां के नियमों का उन्हें पालन करना पड़ता है और करते हैं। "वे ही अपने धर्म-स्थानों में अपने नियमों की उपेक्षा करें" यह विचारणीय है।

कल प्रथम-दिवस के प्रसंग से ज्ञानाराधना से संबंधित कुछ प्रकाश डाला गया था। आज पर्यूषण पर्व का द्वितीय दिवस है। ज्ञान के बाद दर्शन का नम्वर आता है "दर्शन "सम्यकत्व" का ही अपर नाम है। सम्यक्त्व के विषय में अभी कुछ समय पूर्व संकेत दिये ही गये थे। उस प्रकार की शुद्ध श्रद्धा रखने वाला अर्हन्नक, श्रावक का नाम आपने सुना ही होगा। "ज्ञाता धर्म कथा" नामक छट्टे अंग के आठवें अध्ययन में १९ वें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ का जीवन संक्षेप में दिया गया है। उस समय अर्हन्नक नाम का श्रावक रहता था जो देश विदेश में जाकर व्यापार करता था। उसकी सम्यक्त्व में कितनी दृढ़ता थी इस बात को आप उसके जीवन की घटना से जान सकेंगे।

अर्हन्नक–श्रावक

जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में अंगदेशान्तर्गत "चम्पा" नाम की प्रसिद्ध नगरी थी। सब प्रकार की ऋद्धि-समृद्धि से भरपूर उस चंपा नगरी में चंद्रच्छाया नामक राजा राज्य करता था।

उस नगरी में अन्य व्यापारियों के साथ अर्हन्नक नाम क
श्रमणोपासक व्यापार करता था। वह ऋद्धिवंत यावत अपरा
भूत था। वह जीवाजीवादि नव तत्त्वों का ज्ञाता देव गुरु धर्म के
प्रति दृढ़ श्रद्धावंत श्रावक के १२ व्रतों से युक्त सम्यक्त्वी श्रावक
था। एक समय सब व्यापारियों ने आपस में विचारकर गिन
सके, तोल सके, माप सके एवं परीक्षा कर सके ऐसी चारों
प्रकार की वस्तुएं लेकर अन्य द्वीप में व्यापारार्थ जाने के लिये
जहाजों में सामान भरकर लवण समुद्र में रवाना हुए। जब
जहाज समुद्र में काफी योजन दूर चले गये तब आकाश में
अकाल में बादल गर्जने लगे, बिजली चमकने लगी और भयंकर
शब्द होने लगे। इतने में उन यात्रियों ने एक बड़े भयावने पिशाच
का रूप देखा। उसे सामने आते हुए देख वे डरे और सब
व्यापारी भयभीत होते हुए भैंरू, भवानी, दुर्गा, आदि की मानता
पूजा करने लगे, किन्तु वह अर्हन्नक श्रावक उसे देखकर डरा
नहीं, व्याकुल एवं उद्विग्न नहीं हुवा; वह उस जहाज में आये
हुए उस उपसर्ग को देखकर एक ओर जाकर भूमि की प्रमार्जना-
प्रतिलेखना कर सागारी संथारा किया। तब उस भयावने
पिशाच ने अर्हन्नक श्रावक के निकट आकर उसे संबोधन करते
हुए कहा "अरे अप्रार्थित का प्रार्थी! यावत् ही श्री से रहित
अर्हन्नक! तुझे अपने ग्रहण किये सम्यक्त्व सहित व्रतों को खंडित
करना, त्यागना कल्पता नहीं है। परन्तु यदि तू उनका भंग नहीं
करेगा तो मैं इस जहाज को दो अंगुलियों से ऊंचे आकाश में
उठाकर पानी के अन्दर डालूंगा, जिससे तू आर्तध्यान रौद्र
ध्यान से दुखित होता हुआ असमाधिपूर्वक अकाल में ही मृत्यु
को प्राप्त हो जायगा"।

तब उस अर्हन्नक श्रावक ने उस पिशाच के दो-तीन बार

ऐसा कहने पर मन में ऐसा चिंतन करता हुआ भयभीत नहीं हुआ कि "मैंने जीवाजीवादि के स्वरुप को अच्छी तरह जाना है, पहचाना है। मुझे निर्ग्रंथ प्रवचन से कोई भी देव-दानव विचलित करने को समर्थ नहीं है।" अतः जैसी तेरी इच्छा हो सो कर। उसे इस प्रकार के भावों से धर्मध्यान में मग्न देखकर उस पिशाच रुप देव ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस जहाज को दो अंगुलियों से आकाश में ऊंचे उठाकर पुनः उसी प्रकार से कहा। फिर भी वह श्रावक उस उपसर्ग से विचलित नहीं हुआ और धर्म ध्यान में मग्न रहा। जब पिशाच रुप देव उसे विचलित करने में समर्थ नहीं हुआ तब वह शांत बनकर अपने असली दिव्य रूप को प्रकट करता हुआ उस अर्हन्नक श्रावक के चरणों में नत होकर उसकी प्रशंसा करता हुआ अपने अपराधों की क्षमा मांगता हुआ कुण्डल की दो जोड़ी भेंट कर स्वस्थान चला जाता है। भयभीत हुए अन्य व्यापारियों ने पिशाच के उस भयंकर कृत्य को देखकर बारंबार अर्हन्नक श्रावक से अनुनय विनय किया कि इतना बोल देने मात्र से हम सब लोग सुरक्षित हो जायेंगे आप कह दो"। किन्तु उस श्रावक ने धर्म के स्वरूप को हृदय में अच्छी तरह धारण कर रखा था कि····

"सर जावे तो जावे मेरा सत्य धर्म ना जावे"।

(उदाहरण सेठ सुदर्शन-शूली। सती सुभद्रा चंपाद्वार)

बन्धुओं ! आपने देखा कि–"सम्यक्त्व–धर्म में जो दृढ़ रहता है, उसके चरणों में देवता नमस्कार करते हैं। आज हमारी क्या दशा बन रही है ? हम अपने स्वरुप को भूल रहे हैं। बड़ा आश्चर्य हो रहा है। कहा भी है...........

"ढ़ोल बजावे, बाजा बजावे, और बजावे तूरी,
एकेन्द्री–आगे पंचेन्द्री नाचे यह फजीती पूरी।

दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा में शास्त्रकारों ने कहा है :—

"धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवावि तं नमंसंति जस्स धम्मे सयामणो"॥

भगवान ने स्पष्ट रुप से निर्देश दिया है कि "अहिंसा संयम और तपरुप धर्म की सम्यग्-आराधना करने वाले के चरणों में देवता भी नमस्कार करते हैं। पर्यूषण के प्रसंग से यहां कुछ पर्युषण-पर्व के लिये "मौक्तिक संदेश सुनाये जारहे हैं"।

जीवन निर्माण के लिये आवश्यक इस संदेश को ध्यान-पूर्वक श्रवण कर आचरण में लाने की आवश्यकता है।

पर्वाधिराज के मौक्तिक सन्देश

१—संयम-स्वस्थ जीवन का स्वरूप है, असंयम ही दुख का मूल है वाणी के संयम से दुख मिटता है और तन के संयम से व्याधियां दूर होती हैं।

२—दूसरों का लेखा देखा, पर उससे क्या? देखना है तो अपने आपको देखो। अपनी हानि-लाभ का ध्यान करो। दूसरों का धन तुम्हारे किस काम का? और दूसरे की लेनदारी से तुम्हें क्या कष्ट? चिंतन तो अपने बारे में करो, जिस पर कि तुम्हारा हानि-लाभ अवलंबित है। यही स्वाध्याय है और यही आत्म चिंतन है।

३—जीवन शान्ति के लिये उपशम उतना ही आवश्यक है जितना कि शरीर धारण के लिये श्वास-ग्रहण। कितना भी तप जप एवं व्रत क्यों न किया जाय यदि काम-क्रोध लोभ मोह का शमन नहीं हुआ तो मूल उद्देश्य की सिद्धि नहीं होगी।

४—कठोर से कठोर पत्थर पर भी चोट का निशान पड़ जाता है, किन्तु पानी पर चोट की कोई रेखा नहीं पड़ती। ज्ञानी का मन पानी की तरह होता है। सच्चा ज्ञानी वही है, जिस पर सांसारिक-चोटों का कोई असर नहीं पड़ता।

५—गधे की लात से भला आदमी बच कर चलता है किन्तु गधा तो लात का जवाब लात से ही देता है। ऐसे हीं ज्ञानी जन झगड़ा करने वालों से दूर हो जाते हैं और यह समझते हैं कि लात के बदले लात मारना तो गधे का काम है।

६—आत्मा उपशम रस का सागर है। उसमें क्रोधाग्नि, खोजे भी नहीं मिलती। ज्ञानी जन को निरंतर यही संकल्प करना चाहिये कि "मैं अमृत सिन्धु हुं मेरे तन-मन वाणी से कभी विष नहीं झर सकता। प्रिय अप्रिय अपना-पराया सब पर अमृत बरसाना मेरा काम है। मेरे रोम-रोम से प्रेम-शान्ति और प्रशम रस का अमृत छलकता रहे यह मेरा स्वभाव है तथा इसमें जरा भी कमी आना मेरा मरण है।

७—सीमित जल रखने वाला समुद्र आग के गोले गिरने पर भी नहीं गरमाता। वह अपना धर्म निभाता है। फिर मैं तो अनंत ज्ञान का समुद्र हूं। साधारण से निमित्त बेचारे मेरा क्या करेंगे? मुझे अपना धर्म निभाना चाहिये। उपशम-भाव में लीन रहना ही मेरा धर्म है।

८—कहावत है कि "पाप के साथ ताप और संताप बढ़ता है, और आवश्यक्ताएं पाप की जननी हैं। आवश्यक्ता की मात्रा में जितनी कमी करोगे पाप और संताप उतनी ही मात्रा में कम हो जायंगे।"

९—वहुत सी आवश्यक्ताएं तो मनुष्य शोभा, नकल और शौक आदि कारणों से वढ़ा लेता है। पान वीड़ी तेल साबुन नशा वेशभूषा और सजावट आदि आवश्यक्ताएं कृत्रिम हैं। नैसर्गिक नहीं। ऐसी आवश्यक्ताएं घटाये घटती हैं और वढ़ाये वढ़ती हैं। आवश्यक्ता है, ऐसी कृत्रिम आवश्यक्ताओं पर पूर्ण नियंत्रण हो, जिससे कि जीवन में दुख घटे और सुख बढ़े।

१०—भौतिक उत्पादन वढ़ाने वाले भले ही आवश्यक्ता की वृद्धि करें, परन्तु शान्ति-प्रेमियों के लिये तो आवश्यकता पर काबू करना योग्य है।

११—संसार के धन-दौलत परिवार एक दिन तुमको असमर्थ समझ निश्चित छोड़ने वाले हैं तो फिर अपने सामर्थ्य के दिनों में तुम ही उन्हें छोड़ देने की हिम्मत क्यों नहीं दिखाते? किसी के मना करने पर या असमर्थता वश अलग वैठना उतना महत्व नहीं रखता जितना कि सशक्त दशा में स्वेच्छा पूर्वक वैठने का है।

१२—श्रावक आनंद ने पन्द्रह वर्ष गृहस्थ के कारोवार के साथ व्रत पालन करके पड़िमा अंगीकार कर ली और वड़े पुत्र को सारा गृह भार संभला दिया। क्या आप भी इस प्रपंच की गठड़ी को हल्का करना नहीं चाहते ?

१३—मनुष्य जीवन का काम पूरा नहीं होता, उसके पहिले जीवन के दिन पूरे हो जाते हैं अतः धर्माराधन में भूल करके भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

१४—किसी का उपकार करो तो भूल जाओ, किन्तु अपने उपकारी को कभी न भूलो।

१५—अपनी धर्म करनी को गुप्त रखो, परन्तु दोषों को प्रकट किये विना न रहो।

१६—गड़े हुए मुर्दे और बुझी हुई कलह आदि को फिर से ऊपर लाना बुद्धिमत्ता नहीं है।

१७—रोग से बचना हो तो कम खाओ, और झगड़े से बचना हो तो गम खाओ।

१८—उपशम कैसे करना-सामाजिक प्राणी होने से मनुष्य को प्रतिपल संघर्ष से मुकाबला करना पड़ता है। अत: आवश्यक है कि "मनुष्य आत्मीयता से रहे।" पुत्र की चूक होने पर भी जैसे पिता उसे सहन करता है और उसके द्वारा बिगड़े काम को सुधारता है, संघ और समाज में भी व्यक्तियों को इसी तरह से रहना चाहिये। हर व्यक्ति समाज का अंग है, एक अंग की स्खलना से दूसरे को कष्ट भोगना पड़ता है। फिर भी उनमें परस्पर सहानुभूति पूर्ण व्यवहार होता है। पैर आंख की चूक से गड्डे में गिरकर भी फिर उसी से मार्ग-दर्शन चाहता है।

साधक को चाहिये कि "समाज को शरीर और अपने को अंग मानकर चले तो कभी कटुता उत्पन्न ही नहीं होगी। आत्मीयता से मनुष्य जब दूसरे की त्रुटि को अपनी मानेगा तो उसके सन्मुख सभी अपने होंगे, कोई पराया नहीं रहेगा। फिर वैर या विरोध किससे ? हिंसक पशु भी आत्मीयता के कारण अपने बच्चों से प्यार करता है।

तृतीय दिवस

चारित्राराधना

जयकारी संकट हारी यह आया पर्व महान रे
तू सफल बना जीवन-घड़ियां .... ॥ टेर ॥

काम-क्रोध यह अनल-भयंकर, उसको शांत बनाता ।
इसीलिये यह पर्व जगत में, "परिउपशम कहलाता" ॥ अरे हां ॥
उसको ध्यावे वे बनजावे, अनुपम जिन भगवान रे ॥ तू ॥
जैन जगत ने पर्व-सरीखे, परम तत्त्व को पाया ।
फल-स्वरुप सारी जनता में "अनुपम आनंद छाया" ॥ अरे हां ॥
तुम देखो जिधर वस उधर उधर खिल रहा धर्म दरवार रे ॥तू॥
मधुर मधुर तुम बोल बोल, सबका मन मधुर बनादो ।
क्षमा-धर्म सबको सिखलाकर "वैर-विरोध मिटादो" ॥ अरे हां ॥
सब हिल मिल के अंतर दिल के सब धोलो पाप विकार रे ॥तू॥
धन-यौवन-सत्ता का मनमें कभी मान नहीं करना ।
विनय विवेक विचार धर्म के "लेकर सदा विचरना" ॥अरे हां॥
यह पर्व मना "अरु सफल बना यह मानव" जीवन सार रे ॥तू॥

बन्धुओं ! महारानी देवकी भगवान अरिष्टनेमि की सेवा में पहुँच कर विधि युक्त वंदन नमस्कार करके पर्यूपासना कर रही है, भगवान अरिष्टनेमि देवकी से कहते हैं—

(शास्त्र वाचन पृ. ३७ से ७१ तक) बीच २ में संगीत ....

बन्धुओं ! आज आपके सामने मुनि गज सुकमाल के चरित्र का वर्णन आया । उस महान आत्मा ने संसार का त्याग कर किन उत्कृष्ट भावों से सामायिक चारित्र की प्रतिज्ञा ली

और उसी दिन प्रभु की आज्ञा लेकर श्मशान में ध्यान-मौन धार कर अंतिम लक्ष्य को प्राप्त किया। अपने शत्रु पर भी समभाव रखा कि "अहो मेरे श्वसुर मुझे पगड़ी बंधा रहे हैं।" इस प्रकार इन आदर्शों को ध्यान में लेकर आप भी यथा शक्ति त्याग-प्रत्याख्यान लेकर दिन-रात के २४ घंटों में से कुछ समय सामायिक की साधना में लगाकर अभ्यास करें। कुछ समय ध्यान एवं मौन की साधना करे। करते-करते ही साधना सधती है। उन गजसुकमालजी की यह साधना कोई एक भव की नहीं थी। भव भवान्तरों से की गई साधना का ही यह परिणाम है कि चरम भव में एक ही दिन की दीक्षा-पर्याय व भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा धारण कर श्मशान में ध्यान-मौन कर सिद्ध गति प्राप्त की।

यह चारित्र की उत्कृष्ट आराधना है। आप भी देश चारित्री हैं। जितने भी करण और योग से यह श्रावक-व्रत अंगीकार किया है, त्याग प्रत्याख्यान धारण किये हैं, सामायिक-व्रत की आराधना कर रहे हैं। उस साधना में उत्तरोत्तर भावों की उज्ज्वलता होनी आवश्यक है श्री नंदीषेणमुनिजी ने दीक्षा धारण कर किस प्रकार उत्कृष्ट भावना से। ज्ञान वृद्धि करते हुए साथी मुनिराजों की सेवा व्यावच्च कर कर्मों की निर्जरा की। "सेवा धर्म परम गहनो योगिनामप्यगम्य:"

श्री नंदीषेणमुनि की कथा :-

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मगध देश विख्यात था। उस देश के नंदी नामक ग्राम में सोमला-नामक ब्राह्मणी रहती थी। उसके एक भाग्यहीन, कुरुप पुत्र था जिसका नाम नंदीषेण था। छोटी उम्र में ही माता पिता का स्वर्गवास हो जाने से वह

विद्याहीन नंदीषेण गर्मी के कष्टों को सहन करता हुआ बड़ी मुश्किल से अपना गुजारा करता था। उसकी इस प्रकार की दुखी अवस्था देखकर उसका मामा उसे अपने घर लेकर आया यौवन अवस्था देखकर उसने सोचा, "इस कुरुप को कौन अपनी कन्या देगा"। ऐसा विचार कर अपनी ही सात कन्याओं में से एक कन्या के साथ उसकी शादी करने के लिये उससे वार्तालाप कर रहा था। इस वार्तालाप को उसकी कन्याओं ने सुना तो उन्होंने भी उसके साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया। इस पर नंदीषेण उदास होगया तब उसके मामा ने उसे आश्वासन देते हुए कहा कि "तू फिकर मत कर - तेरा विवाह किसी अन्य कन्या के साथ करने का प्रयत्न करूंगा"। किन्तु नंदीषेण ने सोचा मेरी इस कुरुपता के कारण जब मामा की कन्या ही मुझे नहीं चाहती है, तब अन्य कन्या मुझे कैसे पसंद करेगी ? वह अपने पूर्व-कृत-पाप का उदय जानकर वहां से आधी रात को निकल पड़ा और अपने भाग्य को कोसता हुआ विचार करने लगा कि "इस प्रकार के जीने से तो मरना ही अच्छा है"। ऐसा विचार कर वह पर्वत के शिखर से गिर कर आत्म हत्या करना ही चाहता था कि पीछे से किसी ने उसका हाथ पकड़ा। उसने सोचा कि "दुनियां में मुझे कोई चाहता ही नहीं फिर मुझ मरते हुए को कौन चाहने वाला आगया" ? ऐसा सोचकर ज्योंही उसने पीछे मुड़कर देखा तो मुनिराज के दर्शन हुए। उसने मुनिराज के चरणों में गिरते हुए कहा कि "दुनियां में मुझे कोई नहीं चाहता, बल्कि मुझसे घृणा करते हुए मेरा तिरस्कार करते हैं। इस दुख से घबरा कर ही मैं मरना चाहता था। फिर आपने मुझे क्यों पकड़ा ?" मुनिराज ने कहा "जिसे कोई नहीं चाहता उसे ही तो हम चाहते है। इस प्रकार आत्म-हत्या कर तुम संसार में जन्म-मरण के चक्कर को बढ़ा रहे हो"।

तब नंदीषेण ने पूछा "तो फिर मुझे क्या करना चाहिये ? मुझे मार्ग–दर्शन देने वाला नहीं मिला।"

मुनिराज ने कहा कि "तुम अपने जीवन से निराश होकर मर ही रहे थे, अतः तुम अपने इस शेष जीवन को संत-चरणों में लगादो अर्थात् भागवती दीक्षा ग्रहण कर ज्ञान–दर्शन चारित्र एवं तप की सम्यक् प्रकार से आराधना कर अपना भविष्य उज्ज्वल बनाओ"। मुनिराज का उपदेश उसकी समझ में आया और उसने मुनिराज के चरणों में अपना जीवन अर्पण कर दिया। संयम लेकर ज्ञानाभ्यास करता हुआ उसने यह प्रतिज्ञा धारी कि "अबसे मैं अपनी दोनों आंखों के सिवाय अपने शेष शरीर की सार संभाल न करता हुआ सारा जीवन संत–महात्माओं की सेवा में लगाऊं"। उसी कर्तव्य निष्ठा से वह संत-मुनिराजों की उत्कृष्ट भावना से वैय्यावृत्य करते हुए समय को बिता रहा था। उसकी उत्कृष्टता से प्रभावित होकर इन्द्र ने देवताओं की सभा में उसकी प्रशंसा की। किसी देव को उक्त प्रशंसा सहन नहीं हुई कि "हम अमर देवताओं के सामने हाड़ मांस लोही राध के पुतले, अशुचि के भण्डार स्वरुप मानव की प्रशंसा करना हमारा अपमान है। मैं स्वयं जाकर उसे उसकी प्रतिज्ञा से गिराता हूँ। ऐसा विचार कर वह मृत्युलोक में आता है और दो साधु का रूप वैक्रिय शक्ति से बनाकर एक साधु को बीमार अवस्था में ज़ंगल में बिठाकर, दूसरे साधु रुप से वह जहां नंदीषेण थे, वहां आता है।

उस समय नंदीषेण मुनि गोचरी लाकर भोजन कर रहे थे। एक ग्रास मुंह में लिया था, एक हाथ में था। इतने में ही वह साधु रुप धारी देव आकर मुनि नंदीषेण से कहता है–"अहो! बड़ा व्यावच्ची नाम धराता है। अरे यहां नजदीक जंगल में मेरे

गुरु महाराज भूख-प्यास एवं वीमारी से कष्ट पारहे हैं। क्या तुझे किसी ने सूचना नहीं दी ? वे वहुत कमजोर हो गये हैं। अब उनसे चला भी नहीं जाता है और मैं उनको उठाकर लाने में समर्थ भी नहीं हूं"।

सुना था कि "यहां कोई व्यावच्ची साधु रहते हैं पूछताछ करता हुआ मैं तुम्हारे पास आया हूँ"। उसकी उन वातें सुनकर नंदीषेण मुनि ने हाथ का ग्रास पात्र में रखकर पात्र को समेट कर सुरक्षित रखते हुए और पानी की आवश्यकता देखकर पानी लाने के लिये वे ग्राम में गृहस्थों के यहां गये, पर देव माया से उन्हें प्रासुक पानी भी नहीं मिला पर मुनियों की शक्ति (लब्धि) के सामने देव भी हार जाते हैं। एक जगह से शुद्ध-निर्दोष जल प्राप्त करके वे शीघ्रता से उस साधु वेषधारी देव के पीछे चलते २ जंगल में जहां वह वृद्ध-ग्लान वीमार साधु वेषधारी देव बैठा था, वहां आये। उनको आया देखते ही वह वृद्ध ग्लान साधु क्रोधित होता हुआ कहने लगा कि "वस-वस देख लिया तुम्हारी सेवा व्यावच्च को। कव से यहां पड़ा हुआ कितनी तकलीफ पारहा हूं ? फिर भी तुम्हारा पता नहीं ! खाली सेवा भावी नाम धराते हो"। तव वह नंदीषेण उन महात्मा को वंदन-नमस्कार करके नम्रता पूर्वक क्षमा मांगने लगे कि "महात्मन्, मुझे पता नहीं था कि आप यहां इस प्रकार का कष्ट भोग रहे हैं। जैसे ही मुझे ज्ञात हुआ, करते हुए आहार को छोड़कर पानी लेकर आ ही रहा हूँ"।

क्षमा करिये, "प्रासुक पानी मिलने में देर हो गई अतः आपको अधिक कष्ट भोगना पड़ा कृपा करके शीतल जल आरोगिये और मेरे साथ पधारिये"।

वृद्ध मुनि ने जल पीकर कहा कि "मुझसे चला ही जाता तो मैं आ ही नहीं जाता। जा जा ! तेरे से सेवा नहीं होती तो सेवाभावी नाम क्यों धराता है" ? उनकी अशक्ति देखकर मुनि नंदीषेण ने कहा–"महात्मन् ! मुझे क्षमा करिये आप मेरे कंधे पर विराज जाइये मैं आपको शहर में ले चलता हूँ, वहाँ आपकी सम्यक् प्रकार से सेवा हो सकती है। यहां जंगल में योग्य साधन के अभाव में अच्छी तरह आपको शांति नहीं पहुँचाई जा सकती। वे मुनि उसके कंधे पर बैठे गये। रास्ते में उन वृद्ध साधु वेषधारी देव ने उनके कंधे पर बैठे-बैठे ही टट्टी करदी। उन नंदीषेण मुनि के सारे वस्त्र भर गये, मक्खियाँ भिनभिनाने लगी फिर भी विचलित नहीं हुए, बल्कि मनमें विचारने लगे– "अहो ! मुझे पहले पता नहीं लगा। पहले पता लग जाता तो जल्दी आकर इनकी सेवा में जुट जाता। अब शीघ्र लेजाकर इनका ऐसा उपाय करुं, जिससे इन्हें शान्ति लाभ हो इस प्रकार मन ही मन विचार करते हुए चले जा रहे थे"। देव ने अवधिज्ञान से इनके मनोभावों को देखा तो अत्यन्त ही प्रसन्न होते हुए अपना दिव्य रूप प्रकट कर उन सेवा-भावी मुनि नंदीषेण के चरणों में नत-मस्तक हुआ। आकाश से फूलों की वर्षा की और इन्द्र-सभा की सारी वार्ता कहते हुए अपने द्वारा दिये गये कष्टों की क्षमा चाही।

धन्यवाद देते हुए और उनके संयमी एवं व्यावच्ची जीवन की प्रशंसा करके वह स्वर्ग में चला गया। इस प्रकार १२ वर्ष तक कठिन तप एवं सेवा की आराधना करके अंत समय में संथारा किया और यह नियाणा किया कि "अगले जन्म में स्त्री-वल्लभ बनूं"। इस निदान के कारण वह वहां से मरकर महान्-रूपवान वसुदेव (श्री कृष्ण के पिता) हुए।

चतुर्थ दिवस

चारित्राराधना

घणो पछतावेला, जो धरम ध्यान में मन न लगावेला

वन्धुओं !

अंतकृत् दशांग सूत्र के तीसरे वर्ग का वर्णन कल हो चुका है अब चौथे वर्ग का प्रारंभ करते हुए शास्त्रकार कहते हैं, शास्त्र-वाचन। पृ. ७१ से से ९९ तक।

बन्धुओं, इन महान आत्माओं ने किन उत्कृष्ट भावों से संसार की असारता को समझकर और ऋद्धि-संपदा का त्याग कर अपनी आत्मा का कल्याण किया। इस प्रसंग से आप भी अपनी भावनाओं की उत्कृष्टता के साथ संसार का त्याग करने का मनोरथ करते ही हैं। जब तक वह समय प्राप्त न हो, तब तक सम्यक्त्व पूर्वक श्रावक के बारह व्रतों का स्वरूप समझकर यथा-शक्ति निम्नानुसार अपने जीवन में धारण करे।

व्रत धारक का नाम..

पिता या पति का नाम.............................. ....दि.................

गांव..

सम्यक्त्व—अरिहंत के १२ सिद्ध के ८ आचार्य के ३६ उपाध्याय के २५ साधु के २७ गुणों से युक्त अरिहंत एवं सिद्ध को देव तथा आचार्य उपाध्याय साधु-साध्वी को गुरु एवं केवली-प्ररूपित-धर्म में श्रद्धा करता हुआ रोज १ माला फेरूंगा। साधु-साध्वी गांव में हो तो दर्शन करूंगा। कुछ समय धर्म-ध्यान में लगाऊंगा।

१– अहिंसा अणुव्रत—निरपराधी त्रस-जीवों को संकल्प कर न मारूंगा न मराऊंगा मन-वचन काया से । दो करण-तीन योग से ।

२– सत्य-व्रत—मोटा झूठ नहीं बोलूगा २ करण ३ योग से

३– अचौर्य-व्रत—मोटी चौरी नहीं करूंगा २ करण ३ योग से
कानून का आगार

४– ब्रह्मचर्य-व्रत—आजीवन कुशील का त्याग या १ माह में.... दिन के सिवाय त्याग १ करण १ योग से ।

५– अपरिग्रह अणुव्रत—" " लाख की चल अचल संपत्ति उपरांत त्याग १ करण ३ योग से ।

६– दिशापरिमाण—भारत वर्ष के बाहर जाकर ५ ही आश्रव सेवन का त्याग १ करण ३ योग से । जीवन में विदेश-यात्रा २ वार नमस्कार मंत्र के भांगे से खुली ।

७– भोगोपभोग परिमाण—२६ बोल की मर्यादा १ करण ३ योग से पन्द्रह कर्मादान का त्याग ३ करण ३ योग से ।

८– अनर्थ दण्ड विरमण—अनर्थ दण्ड का त्याग करुंगा २ करण ३ योग से ।

९– सामायिक-व्रत—१ माह में............... सामायिक करुंगा । २ करण ३ योग से ।

१०–दिशावकाशिक व्रत—वर्ष में........दया .... संवर........ २ करण ३ योग से ।

प्रतिदिन १४ नियम का चितन

१. सचित २. द्रव्य ३. विगय ४. उपानह ५. तंबोल ६. वस्त्र ७. पुष्प ८. वाहन ९. सयण १०. विलेपन ११. अब्रह्म १२. दिशा १३. स्नान १४. भात पानी ।

असि, मसि, कृषि, वाणिज्य और शिल्प की मर्यादा।

११-पौषधव्रत—वर्ष में.......पौषध करुंगा २ करण से ३ योग से

१२-अतिथि संविभाग— साधु-साध्वी को १४ प्रकार का निर्दोष दान—आत्म कल्याणार्थ देता रहूँगा।

सागारी संलेखणा संथारा-

आहार शरीर उपधि पचखूं पाप अठार।
मर जाऊं तो वोसिरे, जीवूं जागूं तो आगार॥
आरंभ, परिग्रह तजकरी पंच महाव्रत धार।
अंत समय आलोयणा करुं संथारो सार॥

श्रावकजी के चार विश्राम—१-भार ढोने वाला भार को एक कंधे से दूसरे कंधे पर रखे और पहले कंधे को विश्राम दे [यह प्रथम विश्राम है] २-भार को चबूतरे आदि पर रखकर मल-मूत्र की वाधा दूर करे, खा-पीकर, भूख-प्यास की बाधा दूर करे [यह दूसरा विश्राम है] ३-रात्रि को धर्मशाला मन्दिर आदि में रात भर रहे, सोकर दिन भर का श्रम दूर करे (यह तीसरा विश्राम है) ४-जहां पर भार पहुंचाना है, वहां ठेठ भार पहुँचादे और निश्चित हो जाय (यह चौथा विश्राम है)।

इसी प्रकार १२ व्रत और नमस्कार मंत्र के ध्यान सहित नवकारसी आदि का प्रत्याख्यान धारण करें (श्रावक का यह पहला विश्राम है) प्रतिदिन सामायिक् और छ:काय की आराधना पूर्वक दिशावकाशिक व्रत सम्यक प्रकार से पाले (यह दूसरा विश्राम) महीने में छः (८-१४-३०-१५) दिन प्रति पूर्ण पौषध सम्यक् प्रकार से पाले (यह तीसरा विश्राम है) अंतिम समय में

संलेखना संथारा करके भक्त प्रत्याख्यान सहित समाधि मरण स्वीकार करे (यह चौथा विश्राम है)।

जिस प्रकार भार-वाहक के चार विश्राम कहे गये हैं, उसी प्रकार श्रावकों को भी चार विश्राम स्थानों में विश्रांति लेने की आवश्यकता है। इन व्रतों और विश्राम की भूमिका में दान का भी महत्व है। अतः आज पर्यूषण के 'चतुर्थ दिवस' के प्रसंग पर दानाराधना विषयक श्रेयांसकुमार का चरित्र भी अत्यन्त प्रेरणाप्रद है।

प्रत्याख्यान—(विधि पीछे परिशिष्ट में देखें)

दान की महिमा पर श्रेयांसकुमार की कथा–

अक्षय तृतीया—यह पर्व सुपात्र–दान की याद दिलाता है, पात्र ४ प्रकार के हैं—

१— सुपात्र–निर्ग्रंथ संत सतियांजी।
२— पात्र–स्वधर्मी बन्धु श्रावक-श्राविका सम्यक् दृष्टि।
३— अपात्र–रंक-भिखारी, दुखी-दर्दी।
४— कुपात्र–असतीजन, वैश्या, कुत्ता, विल्ली आदि शिकारी पशु

सुपात्रदान–

परम्परा से मोक्ष का कारण है और मोक्ष का सुख अक्षय होने से इसका नाम अक्षय तृतीया रखा गया है। यह दिवस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव भगवान के पारणे का स्मरण दिलाता है।

"कितने ही भव-पूर्व भगवान ऋषभदेव के जीव ने मार्ग से जाते हुए खेत में बैलों को देख कर मुंह में छीका लगाने के लिये

की विधि वताई। लोगो ने वैलों के मुंह पर वांधा, वैलों ने ४०० निःश्वास डाले जिससे उन्हें "४०० दिन की भोजन की अंतराय लगी" ऐसा कहा जाता है।

"भगवान ऋषभदेव ने चैत्र वदी ८ को दीक्षा ली।" उस समय में ये प्रथम जैन साधु थे। उस समय कोई संत जीवन के विधि-विधान भिक्षा आदि विषय का जानकार नहीं था। जहां भी भगवान विचरण करते हुए जाते तो लोग उन्हें हाथी, घोड़े पालकी आदि से निमंत्रित करते। कोई सोना, चांदी, धन माणक मोती आदि की भेंट करते, कोई अपनी कन्या देना चाहते पर निर्दोष आहार-दान से अनभिज्ञ होने से कोई भी आहार के लिए निवेदन नहीं करता। इस प्रकार लगभग ४०० दिन भगवान के निराहार अवस्था में वीत गये।

जिस दिन भगवान विचरण करते हुए हस्तिनापुर नगर में पधारने वाले थे उस दिन रात्रि को महाराज सोमप्रभ (वाहुवलिजी के पुत्र) को स्वप्न आया कि "राजकुमार श्रेयांस एक दिव्य पुरुष को शत्रुओं से विजय करने में सहायक वने"। राजकुमार श्रेयांस को स्वप्न आया कि "श्याम (काले) वने हुए मेरु पर्वत को दुग्ध से सिंचन कर स्वर्ण मय वनाया" उसी नगर के सुवुद्धि श्रेष्ठी को स्वप्न आया कि "हजार किरणों को जो सूर्य से अलग हो रही थी उन्हें राजकुमार श्रेयांस ने सूर्य से जोड़ा"।

प्रातःकाल ये सभी मिले और आपस में अपने स्वप्न की वार्ता एक-दूसरे से कहते हुए विचार कर रहे थे, किंतु कोई भी इसका समुचित समाधान नहीं कर पारहे थे। इतना अवश्य कह रहे थे कि "राजकुमार श्रेयांस के द्वारा कोई महत्वपूर्ण

शुभ कार्य सम्पन्न होने वाला है"। इतने में भगवान का नगर में पदार्पण हुआ।

साधु वेष में कृश-शरीर देखकर श्रेयाँस भगवान को नहीं पहचान सके। साधु-रुप को देखकर उन्हें विचार हुआ कि "ऐसा रूप मैंने पहले कभी देखा है। इसी विचार में मग्न बने हुए "राजकुमार श्रेयांस को जाति स्मरण ज्ञान होगया।" उन्हें पूर्व का देखा जाना अनुभव किया हुआ साधु जीवन प्रत्यक्ष हो गया। वे सारा विधि विधान जान गए और भगवान की सेवा में आहार के लिये निवेदन किया।"

भगवान राजमहलों में पधारे। वहां उस समय और कोई निर्दोष वस्तु उपलब्ध नहीं थी, खेती से आये हुए इक्षु-रस के घड़े रखे हुए थे। कुमार ने प्रभु से इन्हें ग्रहण करने का निवेदन किया। प्रभु ने उन्हें निर्दोष जानकर करपात्र फैला दिया। कुमार ने १०८ घड़ों से प्रभु की इक्षुरस का आहार-दान देकर उक्त तीनों स्वप्नों को साकार किया। यह वही "अक्षयतृतीया" का पावन दिवस था।

१—भगवान का शरीर-रूप स्वर्ण मेरु ४०० दिन की घोर तपस्या से श्याम होगया था, जिसे इक्षु-रस-रुप दुग्ध से सिंचन कर पुनः स्वर्णमय कांतिवान बनाया।

२—भगवान औदारिक शरीर से ही कर्म-शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं। आहार के प्रभाव से वह शरीर अशक्त होरहा था, जिसे कुमार ने इक्षु-रस से पारणा कराकर सशक्त बनाया जिससे भगवान ने कर्म-शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके केवल ज्ञान-केवल दर्शन प्रकट किया।

३—भगवान के शरीर-रूपी सूर्य से कांतिरूपी किरणें अल[ग]
हो रही थी। कुमार ने 'इक्षु-रस का पारणा कराकर शरी[र]
को पुनः कान्तियुक्त बनाया। इस सुपात्र दान के प्रभाव [से]
देवों ने "अहो दानं अहो दानं" की घोषणा कर पांच प्रका[र]
की दिव्य वृष्टि की—१ देवदुंदुभीनाद, २ रत्न-सुवर्ण-वृष्टि
३ पंच वर्ण-पुष्प-वृष्टि ४ सुगंधोदक वृष्टि ५ दिव्य-वस्त्र-वृष्टि।

बन्धुओं, आपने दान के महत्त्व के विषय में संक्षि[प्त]
जानकारी प्राप्त की। आज कल भाई वहिन वर्षी तप के रूप [में]
इसकी आराधना करते है। इसकी विधि इस प्रकार है—

चैत्र वदी ८ से उपवास प्रारंभ किया जाता हैं, एकांत
की तपस्या दो वर्ष तक अर्थात् दूसरे वर्ष की अक्षय तृतीया [को]
पारणा न कर तीसरे वर्ष की अक्षय तृतीया को पारणा किय[ा]
जाता है। वीच में चौदस को पारणा आवे तो पारणा न क[र]
वेला किया जाता है इसी तरह वीच में दो अक्षय तृतीया को भ[ी]
यदि पारणा का दिन आवे तो पारणा न कर बेला किया जात[ा]
है। तपस्या के दिनों में उभय काल प्रतिक्रमण करते हुवे पू[र्ण]
ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जाता है पारणे के दिन सूर्यास्त [के]
पश्चात् चौविहार, दिन को सचित पानी नहीं पिया जाता।

इस प्रकार दान के महत्व को समझकर यथा शक्ति
पुद्गलों से ममत्व त्यागते हुए संसार के सभी प्राणियों को अपनी
आत्मा के तुल्य समझते हुए—"दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं" इस
शास्त्रोक्त वाक्य के अनुसार अभयदान का व्रत जीवन में अंगीकार
करने की आवश्यकता है।

कुपात्र-दान :-

स्वार्थ के वशीभूत होकर दिया जाता है—जब कि अपात्र-दान में अनुकम्पा की भावना विशेष रुप से कार्य करती है। 'अनुकम्पा' भाव सम्यक्त्वी के लक्षणों में चौथा लक्षण है। पात्र और सुपात्र दान में भावनाएं उत्तरोत्तर प्रबल होती हैं, वात्सल्य प्रेम उमड़ पड़ता है पात्र दान में, जबकि सुपात्रदान में मानसिक वाचिक-कायिक-योग प्रशस्त होते हैं, जिससे उत्कृष्ट रसायन आने पर तो तीर्थंकर गोत्र उपार्जित हो सकता है।

पंचम दिवस

शीलाराधना

पर्वराज ही है सब पर्वों में श्रेयकार–

बन्धुओं ! कल तक अंतकृद्दशांग सूत्र के पांच वर्ग पूर्ण हुए थे। छट्ठे वर्ग के विषय में श्री जंबूस्वामी भगवान् सुधर्मास्वामी से पूछते हैं—

शास्त्र-वाचन पृ. १०० से १२२ तक, बीच-बीच में संगीत

बन्धुओं, अभी आपने अंतगढ़ सूत्र का श्रवण किया। सुदर्शन श्रावक के जीवन में बचपन से ही माता-पिता के द्वारा कैसे-कैसे संस्कार संस्कारित किये गये थे। माता-पिता का हम

पर कितना उपकार है ? उन्होंने हमें पाल पोष कर आज कि
योग्य बनाया है ? हम जन्म-जन्मान्तर में भी उनके ऋण से उऋण
नहीं हो सकते । माता-पिता के उपकार का वर्णन करते हु
कवि ने कहा है—"मां बाप ने भूलशो नहीं"—

शास्त्रकारों ने कहा है कि—" माता-पिता, गुरुजन एवं स्वामी अर्थात् मालिक इन तीन के ऋण से तभी उऋण हुआ जा सकता है जब वे केवली-प्ररुपित-मार्ग से चलायमान होते हों" उस समय उन्हें प्रतिबोधित कर सावधान कर पुनः " केवली-प्ररुपित-धर्म में स्थिर किया जाय।"

सुदर्शन-श्रावक की आत्मशक्ति कितनी प्रवल थी उन्होंने आत्मा और शरीर के भेद-विज्ञान को समझ लिया था, मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली थी, उन्हें मरने से डर नहीं था। तभी तो वे ऐसे भयंकर उपसर्ग को जानते हुए भी प्रभु-दर्शन के लिये जान को हथेली पर रखकर निकल पड़े। उपसर्ग के समय अपने को मृत्यु के मुख़ में जानकर भी भयभीत न होते हुए उसी शांत-मुद्रा से भूमि का प्रतिलेखन कर आलोचनादि क्रिया करके सागारी संथारा ग्रहण किया और उपसर्ग दूर हो जाने पर "अपने आक्रमक उस अर्जुनमाली" को कितने प्रेम से गोद में सुलाकर सावधान किया। आज का मानव होता तो ऐसे क्रूर व्यक्ति को एक लात मारकर आगे चलता वनता। पर सुदर्शन श्रावक धर्म के रहस्य को जानता था।

जीव–अजीव आदि नव पदार्थों का ज्ञाता था, उससे यह अकार्य कैसे वनता ? इतना ही नहीं, उन्होंने उस दुष्ट आत्मा को भी अपने साथ लेकर भगवान के चरणों में उपस्थित किया और भगवन् की सेवा करने लगे।

"साधु-जीवन" भी कितना आकर्षक होता है ? संसार की सारी भौतिक सुख-संपदा त्याग कर स्व–पर कल्याण का एक मात्र लक्ष्य रखकर अपना जीवन समर्पण कर देना कोई साधारण कार्य नहीं है ?

" जगत के तारने वाले जगत में संत जन ही हैं।" जीवन पर्यंत पांच महाव्रतों का पांच समिति, तीन गुप्ति की निर्मल आराधना करने वाला मोक्ष का अधिकारी होता है उसके पूर्व साधक–अवस्था में वह छः काय जीवों का रक्षक होता है। " वसुधैव कुटुम्बकम् " की भावना को लेकर चलता है। जिनके दर्शन कर अर्जुनमाली जैसी क्रूर आत्मा के भावों में भी किस प्रकार परिवर्तन हो जाता है। यह आप इस अंतगढ़ सूत्र के माध्यम से जान जायेंगे।

"पांच समिति तीन गुप्ति एवं पांच महाव्रत का वर्णन"

क्षेत्र-वास्तु हिरण्य-सुवर्ण-धन-धान्य द्विपद चतुष्पद एवं अन्य समान रूप नौ प्रकार के बाह्य परिग्रह तथा मिथ्यात्व चार कषाय और ९ नो कषाय रूप १४ प्रकार के आभ्यंतर परिग्रह के त्यागी संत महात्मा निम्न पांच महाव्रतों का मन, वचन काय रूप तीन योग से स्वयं पालन करते हैं, दूसरों से करवाते हैं और पालन करने वालों को अच्छे समझते हैं वे पांच महाव्रत इस प्रकार है :—

१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अचौर्य, ४ ब्रह्मचर्य, ५ अपरिग्रह

उपरोक्त पांच महाव्रतों के धारक ये महात्मा आजीवन पूर्ण ब्रह्मचारी होते हैं। कषाय के वश होकर झूठ नहीं बोलते, बल्कि

मर्मकारी सत्य भी नहीं बोलते। प्रयोजन होने पर एक तिनका भी विना आज्ञा नहीं लेते और आजीवन छह काय के जीवों के रक्षक होते हैं। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति इन पांच स्थावर काय के जीवों की विना प्रयोजन तो क्या, प्रयोजन होने पर भी विराधना (हिंसा) नहीं करते, तो त्रस जीव द्वीन्द्रियादि की हिंसा तो करेंगे ही क्यों ?

अपने उदर-पोषण के लिये सद्गृहस्थों के यहां से उनके अपने लिये बनाये हुए भोजन में से अपनी आवश्यक्तानुसार एषणा के ४२ दोष रहित भोजन ग्रहण करते हैं। सिर पर छत्र एवम् चरणों में उपानह नहीं पहनते। मादक पदार्थों का उपयोग नहीं करते। २१ प्रकार का धोवन पानी या गरम पानी जिसे गृहस्थ अपने ही कार्यों से तैयार करता है, ये काम में लेते हैं। मर्यादित वस्त्र (७२ वर्ग हाथ) एवम् पात्र (४) से अपना निर्वाह करते हैं। गृहस्थों के वस्त्र या पात्र काम में नहीं लेते। इनके रहने का कोई स्थान नियत नहीं होता। कार्तिक-पूर्णिमा के बाद से आषाढ़ी पूर्णिमा तक ये भ्रमण करते रहते हैं। विना कारण इन दिनों में किसी एक ग्राम में २९ दिन से अधिक नहीं ठहरते। चातुर्मास-काल में वर्षा की अधिकता से त्रस एवं स्थावर जीवों की उत्पत्ति अधिक होजाने से ये किसी ग्राम या नगर में गृहस्थों के द्वारा धर्म ध्यान आदि के लिये निर्मित मकानों में या अन्य योग्य सार्वजनिक स्थानों में उन स्थान के मालिक की आज्ञा लेकर ठहरते हैं। जिनकी आज्ञा लेते हैं, उनके यहां का आहार पानी आदि कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते। अपना सारा समय ज्ञान-दर्शन-चारित्र एवं तप-रूप मोक्ष-मार्ग की आराधना में व्यतीत करते हैं स्वयं अपना जीवन आदर्शमय बनाते हैं और यही उपदेश देते हैं, जिससे व्यक्ति अल्पारंभी अल्पपरिग्रही होकर एक दिन आरंभ-परिग्रह से मुक्त हो सके। समता-समाज के

निर्माण में इनका जीवन एक आदर्श होता है। इनका अंश मात्र भी अनुकरण करने वाले बन्धु एक समता समाज की रचना करने में सफल हो सकते हैं। अशांति की भयंकर ज्वाला में जलती हुई दुनियां को समता-समाज ही शांति की श्वास प्राप्त करा सकता है। विश्वशांति का एक मात्र अमोध उपाय— "समतादर्शन" है।

मन-वचन-काया का निरोध रुप गुप्ति से निवृत्ति–मार्ग प्रशस्त होता है जबकि प्रवृत्ति के लिये ईर्या, भाषा, एषणा, आदान भंड मत्त निक्षेपणा एवं उच्चारादि परिष्ठापनिका समिति एक आदर्श पद्धति है। कैसे चलना कैसे बोलना कैसे भिक्षा लेना एवं आवश्यक कार्यों को कैसे करना आदि का सम्यक्ज्ञान एवम् आचरण का मार्ग दर्शक यह समिति रुप पद्धति है। जिसके यथा योग्य सम्यक् आचरण से व्यक्तिकर्म–बन्ध नहीं करता है, कहा भी है —

"जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए.
जयं भुज्जंतो भासंतो, पाव कम्मं न बंधइ"। (दशवैकालिक)

इसी प्रकार का यत्न पूर्वक सम्यक् आचरण करने वाले सेठ सुदर्शन हो गये हैं।

किस प्रकार रहना, किस प्रकार खाना, पीना आदि विषयों पर तो उन्होंने अपने जीवन से शिक्षा ही दी है, बल्कि कैसी भी विषम परिस्थिति में अपने सत्य एवं शील की रक्षा करके हमारे लिये एक आदर्श उपस्थित किया है। आज पर्यूषण के पांचवें दिन के प्रसंग से शील विषयक विवेचन करने का अवसर उपस्थित है। मोक्ष के उपायों में:—

१ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ दान, ५ शील, ६ तप ७ भाव, ८ विशुद्धि ये ८ बातें अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इस पर्यूषण के प्रत्येक दिनों में इनका क्रमशः विवेचन किया जा रहा है

शील की रक्षा सेठ सुदर्शन ने किस प्रकार से करके जं आदर्श उपस्थित किया, उसका अवलोकन करना है। ....

सेठ सुदर्शन —

भरत क्षेत्र में मगध देशान्तर्गत राजा दधिवाहन की चम्पा नगरी में इन्द्रोत्सव के प्रसंग से राजाज्ञानुसार नगर के सभी नागरिक एवं महिलाएं नगर के बाहर उद्यान में उत्सव मनाने के लिये जा रहे हैं।

नगर सेठ सुदर्शन की धर्मपरायणा सुशीला धर्मपत्नी मनोरमा भी, अपने पांच दिव्य एवं तेजस्वी पुत्रों के साथ इन्द्रोत्सव मनाने के लिये घर से सजधज कर रानी के डेरे पर आ गई। पुरोहितानी कपिला भी उपस्थित हुई। रानी ने आगन्तुकों का यथा योग्य आदर सत्कार किया और क्रीड़ा के लिये प्रस्थान करने हेतु तैयार होकर सुसज्जित प्रथम रथ पर पुरोहितानी कपिला के साथ बैठ गई।

नगर सेठानी मनोरमा का रथ उसके पीछे ही चला, जिसमें वह अपने पांचों पुत्रों के साथ बैठी हुई वार्तालाप कर रही थी। उसकी दृष्टि इधर उधर नहीं किन्तु नमी हुई थी। आगे के रथ में बैठी हुई चंचल-नेत्रा कपिला की दृष्टि बार बार इस अपरिचित सुन्दरी मनोरमा को निहार रही थी और विचार कर रही थी कि "नगर की कोई स्त्री मुझसे अपरिचित नहीं है।

किन्तु यह अप्सरा सी सुन्दर नारी क्या अन्य नगर की यहां मेहमान आई हुई है ? और उसके पास में बैठे हुए ये दिव्य राजकुमार कौन हैं" ? कपिला की चंचलता को रानी अभया ने भांप लिया। उसने पूछ ही लिया कपिला ! आज तेरे नेत्र चंचल क्यों हैं ? कपिला ने कहा–महारानीजी ! मैं इस पीछे के रथ में वैठी हुई इस अपरिचित सुन्दरी को देख रही हूँ यह कौन हैं ? और इसके पास वैठे ये दिव्य राजकुमार किसके पुत्र हैं ? रानी ने कहा "अरे" क्या तु नगर सेठ सुदर्शन को नही जानती ? उसकी यह सौभाग्यशालिनी स्त्री और ये पुत्र हैं। कपिला इस उत्तर को सुनकर 'ठहाका मारकर हसी। चाहते हुए भी वह हसी को नही रोक सकी। रानी के बार २ आग्रह करने पर उसने हसी का कारण वतलाते हुए कहा कि 'एक बार के प्रसंग से सुदर्शन' जो नगर सेठ कहलाता है, उसने मुझे स्वयं की अपनी नपुंसकता के विषय में कहा था, यदि यही उसकी स्त्री है तो भी ये पुत्र उसके नहीं हो सकते। रानी, कपिला की बातों से समझ गई कि इसने सुदर्शन सेठ को अपने चक्कर में लिया और वह ठगा गई। उसने कहा कि 'सेठ सुदर्शन ने तुझे ठग लिया है। इन बातों पर से रानी और पुरोहितानी में शर्त हो गई कि 'यदि रानी सुदर्शन को एक वर्ष के भीतर वश में करले तो कपिला हमेशा के लिये महारानी की शिष्या हो जाये'। अन्यथा रानी कपिला को कभी मुंह न दिखायेगी। अर्थात् "मृत्यु का आलिगन करेगी।

इंद्रोत्सव के प्रसंग से उद्यान आदि में धूमधाम कर महारानी, पुरोहितानी एव मनोरमा आदि सभी अपने २ स्थान चले गये। महल में आने पर महारानी ने कपिला से हुई शर्त की बात धायमाता पंडिता से कही और यह भी कहा कि "मैंने कपिला से जो होड़ की है" वह तेरे ही भरोसे की है। यदि समय पर मेरी

प्रतिज्ञा पूर्ण न हुई तो मुझे मरना पडेगा। पंडिता ने महारानी
अभया को आश्वासन देते हुए कहा कि "इसमें तुम्हें चिंता करने
की कोई बात नहीं है। यह तो मेरे बाएं हाथ का खेल है उसका
उपाय भी मेरे ध्यान में आगया है"। "वस तुम 'हा हु' करते हुए
शरीर को तान कर इस प्रकार सो जाओ, जैसे किसी यक्ष का
प्रकोप हो और जव मेरा संकेत मिले तव उठ जाना"। वाकी
काम में कर लुंगी। रानी समझ नहीं पाई कि "यह ऐसा करने को
क्यों कह रही है"? पर उसे पूर्ण विश्वास था कि "यह त्रिया-
चरित्र में पूर्ण कुशल है"। उसने वैसा ही किया। उसके इस दृश्य
की सूचना जैसे ही राजा को मिली, वह घवराया हुआ रानी के
पास आकर उसे सान्त्वना देने लगा किन्तु रानी अधिकाधिक वैसी
चेष्टा करने लगी, मानो, कोई दैविक प्रकोप हो। राजा विशेष
घबड़ाते हुए पंडिता से कहने लगा कि "समझ में नहीं आता इसे
क्या हो गया है"? पंडिता ने कहा-मैं भी नही समझ पारही हूं कि
"इसे क्या हो गया है"? हां एक बात याद आ रही है कि "जव
आप युद्ध में पधारे थे, तव इसने आपकी कुशलकामना के लिये
कामदेव की मानता की थी कि "राजा यदि सकुशल लौट आये
तो में तुम्हारी पूजा करुंगी"। पर मालुम होता है वह उस काम-
देव की पूजा करना भूल गई है। इसीलिये यह प्रकोप उसी का
दिखता है। अतः यदि अव भी कामदेव की पूजा के लिये हर
संभव सहूलियत रानी को प्रदान करने का आश्वासन देते हैं तो
संभव है यह प्रकोप शांत हो जाय। और ध्यान रखिये—जवतक
पूजा का कार्य सम्पन्न न हो तव तक आप या अन्य कर्मचारी
पहरेदार आदि हमारे कार्य में किसी प्रकार का विघ्न न डाले।
राजा घवराया हुआ तो था ही, उसने पंडिता की उक्त वार्ता का
समर्थन करते हूए पूजा के लिये हर संभव सहायता एवं उक्त
कार्य में किसी के द्वारा वाधा न पहुँचाने का आश्वासन दे दिया।

स क्या था ? पंडिता के सांकेतिक शब्दों का इशारा पाकर रानी धीरे-धीरे स्वस्थ होती हुई अंगडाई लेकर इस प्रकार उठ कर राजा को आश्चर्य युक्त देखने लगी जैसे स्वयं की इस हालत का उसे पता ही न हो। महाराजा और पंडिता ने उसे आश्वासन देते हुए कहा कि "अब तुम कामदेव की इच्छानुसार पूजा करने के लिये स्वतंत्र हो"। कामदेव की पूजा के बहाने से पंडिता ने रानी के लिये एकान्त कमरा नियत कर दिया और रोज शाम सूर्यास्त से पहले वह उस कमरे में से कामदेव की कृत्रिम मूर्ति को वैसे ही कपड़े पहनाकर बाहर ले जाती और नगर में घुमाकर वापस ले आती, जैसे कपड़े सेठ सुदर्शन पहनता था।

वह इस बहाने सेठ सुदर्शन को महल में लाने का अवसर देख रही थी, पर उसे इस काम में सफलता न मिल सकी। एक समय 'कौमुदी-उत्सव' मनाने के प्रसंग से महाराजा ने नगर में घोषणा करवाई कि– "कल कार्तिक पूर्णिमा को कौमुदी-उत्सव मनाया जायगा। नगर के सभी लोग–पुरुष वर्ग शहर में नहीं रहें। वे सब नगर के बाहर मनाये जाने वाले कौमुदी-उत्सव में सम्पूर्ण दिन और रात शामिल हों"। नगर सेठ सुदर्शन ने सोचा, "कल तो चातुर्मासिक पौषध का प्रसंग है। अतः राजा से विशेष आज्ञा प्राप्त कर मुझे नगर में ही रह कर पौषध करना चाहिये"। ऐसा सोचकर उसने राजा की सेवा में उपस्थित होकर अपने विचार रखें।

महाराज दधिवाहन नगर सेठ सुदर्शन से अच्छी तरह परिचित था। उसने उसके धार्मिक-आराधना में बाधा देना उचित नहीं समझा और विशेष आज्ञा द्वारा सुदर्शन सेठ को धर्माराधन करने की स्वीकृति देदी।

इस विषय की जानकारी जव पंडिता को प्राप्त हुई तो वह वहुत प्रसन्न हुई। उसने इस अवसर को अपने कार्य साधने का उत्तम प्रसंग समझ कर रानी को ध्यान दिला दिया कि "कल आपकी मनोकामना पूर्ण होगी"।

मैं किसी उपाय से-सुदर्शन सेठ को आपके नियत स्था पर पहुंचा दूंगी। "आगे आपका काम आप जाने"।

रानी भी उस समय की प्रतीक्षा कर रही थी। दूसरे दिन शाम के समय पंडिता ने उस कामदेव की मूर्ति को वैसे ही कपड़े पहिनाए जैसे कपड़े सुदर्शन पौषध के समय पहनता था और उस मूर्ति को विश्वस्त दासियों के द्वारा राज महल के मुख्य द्वार से निकाल कर नगर में घुमाते हुए सुदर्शन के पौषधशाला में जाती है, और उस मूर्ति को एक अप्रसिद्ध स्थान में फेंक कर सुदर्शन से कहती है कि "तुमने आज पौषध ग्रहण किया है"। इससे तुम विचलित न होना, अपने नियमों पर दृढ़ रहना, चाहे कुछ भी हो नहीं तो तुम्हारा नियम भंग हो जायगा"। ऐसा कह कर मूर्ति के स्थान पर सेठ सुदर्शन को दासियों के सिर पर बैठा कर राजमहल के मुख्य द्वार से रानी के नियत कमरे में रख आई। नित्य के आवागमन के कारण पहरेदार भी संदेह नहीं कर सके कि "यह मूर्ति है या मनुष्य"। जव अभयारानी को धायमाता पंडिता ने अपने कार्य में सम्पन्न होने के समाचार दिये तो वह वड़ी प्रसन्न हुई। वह पहले से ही सज धज कर तैयार वैठी थी। इशारा पाते ही वह उस नियत स्थान पर पहुँच गई जहां सेठ सुदर्शन पौषधशाला की भांति धर्मचिंतन कर रहा था। वह तो सोच रहा था कि "मर्यादित समय तक मैंने इस शरीर से ममत्व त्याग दिया है। अतः कोई मेरी हानि करेगा तो मेरे इस नाशवान शरीर को ही नष्ट कर सकता है। मुझे अपने नियम में

दृढ रहना चाहिये"। कमरे में पहुँच कर रानी अभया ने सुदर्शन सेठ से अपने मनोरथ पूर्ण करने क लिये त्रिया चरित्र एवं साम दाम-भेद-नीति से अपने भाव व्यक्त किये। किंतु जब सुदर्शन को मौन देखा तो वह अनुकूल प्रलोभनों से उसे वश में करने का उपाय करने लगी। सुदर्शन ने उसके भावों से अनुमान लगा लिया कि "रानी क्या चाहती है"। उसने दृढ निश्चय कर लिया कि "चाहे प्राण भी चले जावें किन्तु परदारागामी नहीं बनूंगा"। ऐसा निश्चय कर वह मौन धारण किये बैठा रहा। महारानी अभया के अनुनय विनय और रोने विलाप करने का और प्रलोभन देने का उस पर कुछ भी असर नहीं हुआ। इतने प्रयत्न करने पर भी जव अभया सुदर्शन को अपने अनुकूल बनाने में असफल रही तब वह खीज उठी। अब उसने उसे भय के द्वारा वश में करने का सोचकर अपनी आँखे तान कर चेहरे को लाल सुर्ख बना लिया, ललाट पर अनेक सल डालकर पैर पटकती हुई हाथ हिलाती हुई कहने लगी कि– अरे बनिये ! मेरे सामने तेरा इतना साहस !! आखिर मेरी ही प्रजा का एक व्यक्ति होकर मेरे अनुरुप विनय पर और अकड़ता ही जा रहा है। जानता नहीं, कि मैं कौन हूँ ? तुझे अपने जीवन की कुछ भी परवाह है या नहीं ! एक ओर तो मेरे साथ यह सारा राजपाट और तेरा स्वयं का जीवन है और दूसरी ओर तेरी मृत्यु है। तू इनमें से किसको पसंद करता है ?

जरा सोचले। उसके इस प्रकार के विकराल रुप एवं भयंकर शब्दों को सुनकर भी सुदर्शन सेठ किंचित् भी विचलित नहीं हुआ उसका सब परिश्रम व्यर्थ सिद्ध हुआ।

इधर सुदर्शन सोचता है कि–"अब मुझे मौन नहीं रहकर मेरी इस माता को समझाने का प्रयत्न करना चाहिये।" वह

ध्यान से निवृत्त होकर मुस्कराता हुआ कहने लगा–कि "माताजी आप अपने मातृ-धर्म को विस्मृत मत करिये। आप मेरी माता है, मैं आपका बालक हूं।" नीतिकार प्रत्येक व्यक्ति की पाँच माता मानते हैं– राजा की, गुरु की एवं मित्र की पत्नी, पत्नी की और स्वयं की माता। ये पाँच माताएँ होती है। आपकी गणना सर्व प्रथम है। अतः आप सवसे वड़ी राजमाता है। फिर भी आप मुझ बालक पर इस प्रकार क्रुद्ध होकर यह अकार्य करने को क्यों कह रही हैं? यह निकृष्ट कार्य मुझसे कदापि नहीं हो सकता चाहे आप कुछ भी करें। आपने जिस तरह अपना निश्चय सुनाया है, वैसा ही मेरा भी यह निश्चय सुनाये देता हूँ।, "चाहे मेरु कांपने लगे, पृथ्वी आधार त्याग दे, सूर्य अंधकार देने लगे तव भी मैं अपने पर दारा-त्याग की प्रतिज्ञा को कभी नहीं छोड़ सकता। यदि शील भंग करने के वदले मुझे त्रिलोक का राज्य भी मिलता हो तो मैं उसे भी ठुकरा दूंगा। लेकिन शील न त्यागूंगा।" इसके लिये यदि आप मुझे मृत्यु दण्ड देना चाहती हैं तो आप जैसा चाहे वैसा दण्ड दें, उसमें मेरी कोई हानि नहीं है। मेरी हानि तो शील नष्ट करने पर है।

अतः मेरा यही निवेदन है कि "आप अपना दूषित विचार वदल दें।

सुदर्शन का यह उपदेश पूर्ण कथन अभया को जरा भी नहीं रुचा। वह क्रुद्ध होकर तमक कर कहने लगी........'तू माता किसे कहता किसको कहता है और यह उपदेश किसे देता है? मैं कपिला नहीं जो तेरे वाक्जाल में फँस जाऊँ। अभी भी कुछ नहीं विगड़ा है। यदि तूने मेरा कहना नहीं माना तो मैं सिपा–हियों को वुलाकर अभी तुझे सूली पर चढ़वा दूंगी। सिपाहियों के पकड़ने के वाद डर के मारे उस समय यदि तू मेरी वात

मानना स्वीकार कर लेगा तब भी मैं तुझे नहीं छु‌ड़ाऊँगी। फिर तो तूझे सूली पर चढ़ना ही होगा इसलिए समझ, अभी मौका है, और मेरा कहना मान ले। लेकिन सुदर्शन इन सब बातों के होने पर भी दृढ ही बना रहा, पतित नहीं हुआ।

अपनी शक्ति भर सब प्रयत्न करने पर भी सुदर्शन पर कोई असर नहीं हुआ और पूर्व की भांति ही बैठा रहा। तब अभया बाघिन की तरह विफर उठी। उसने अपने "हाथों से अपने शरीर के वस्त्र नोंच डाले, अपने गालों और स्तनों पर नख के चिन्ह बना लिये और इतना सब करके भय का घंटा बजाकर महल-रक्षक-सैनिकों को आवाज दी।" भय का घंटा और रानी की आवाज सुनकर पहरेदार सिपाही तत्क्षण उसी स्थान पर दौड़े आये। उन्होंने देखा कि–"रानी अस्त-व्यस्त दशा में खड़ी है और वहीं पर एक आदमी चुप चाप बैठा है। सिपाहियों को देखते ही रानी उन पर कुपित होती हुई कहने लगी कि "तुम लोग किस तरह का पहरा देते हो? पहरे पर तुम लोगों के रहते हुए भी यह दुष्ट यहां कैसे चला आया? देखो, यह बैठा है, पकड़ो इस दुष्ट को। इसने मेरा सतीत्व नष्ट करने का प्रयत्न करते हुए मेरे शरीर पर टूट पड़ा था। इसने मेरे वस्त्र फाड़ डाले, मेरे शरीर को नोंच डाला। यह तो मैं वीर–पुत्री और वीर नारी थी कि इस दुष्ट से अपने सतीत्व की रक्षा कर सकी। मैं बड़ी कठिनाई से इसके पंजे से छूट कर भय का घंटा बजा सकी हूँ। अब देखते क्या हो, पकड़ो इसको, और ले जाकर सूली लगादो।

मैंने प्रण किया है कि "जब तक इस दुष्ट को सूली न मिलेगी, तब तक अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगी। रानी द्वारा

वताई गई अपनी असावधानी के लिये पहरेदार सिपाही भयभीत हुए। उन्होंने उसे पकड़ लिया और पूछने लगे–"तू कौन है और यहां किस लिये और क्यों आया है ? उसके बार बार पूछने पर भी सुदर्शन पूर्व की भांति मौन ही रहा। कुछ भी नहीं बोला तव अभया ने क्रोधित होते हुए कहा—"यह क्या वोलेगा" घटना स्थल पर अपराधी का पकड़ा जाना ही उसके अपराध की साक्षी है। अतः इसे ले जाकर सूली लगादो। यह कहते हुए रानी वहां से चलदी।

रानी के जाने के बाद सिपाहियों ने सुदर्शन के मुंह की ओर देखकर पहचान लिया, कि अरे। ये तो नगर सेठ हैं। "ये यहां कैसे आये और क्यों आये" कुछ समझ में नहीं आता। यद्यपि इनका वेष भी धर्म–ध्यान करने का है और इसी लिये महाराजा ने इन्हें नगर में रहने की स्वीकृति दी है। फिर रानी के संकेतानुसार ये अपराधी के रूप में महल में कैसे और क्यों आये ? यह वात इन्हीं से पूछना चाहिये। ऐसा विचार कर सिपाहियों के मुखिया ने उससे बार-बार जानना चाहा कि "यद्यपि हम लोग आप पर पूर्ण विश्वास करते हैं, फिर भी रानी ने जो अभियोग लगाया है। वह आपने सुना ही है। अतः अव आप वताइये कि "आप यहां क्यों और कैसे आये। वास्तविक वात क्या है" ? सिपाहियों के प्रश्न पर भी सुदर्शन कुछ न वोला। वह सोचता था कि "ये मुझसे वास्तविक वात पूछ रहे हैं–यदि मैं वास्तविक वात प्रकट करूंगा तो मेरी अभया माता का अपमान होगा। उसे कष्ट में पड़ना पड़ेगा। अतः मेरा तो यही कर्त्तव्य है कि "स्वयं पर सव आपत्तियां झेलकर भी माता की रक्षा करूं"। इसलिये मुझे चुप ही रहना चाहिये। "चाहे प्राणांत-कष्ट का सामना भी क्यों न करना पड़े"। ऐसा सोचकर वह चुप ही रहा।

तव सिपाहियों के मुखिया ने सिपाहियों से कहा कि "रानी के लगाये गये अभियोग के विरुद्ध भी जब ये कुछ नहीं बोलते हैं तब सच्ची वात कैसे जानी जा सकती है ? अव हम इस विषय में कुछ भी निर्णय नहीं कर सकते। इस लिये अच्छा यही होगा कि' इनको महाराज के सामने उपस्थित कर दिया जावे। मुखिया की आज्ञानुसार सिपाही लोग सुदर्शन सेठ को पकड़कर नगर के बाहर महाराजा दधिवाहन के डेरे पर ले गये, और राजा के अंगरक्षकों ने घटना की सारी जानकारी दी। सुनकर राजा को वहुत आश्चर्य हुआ, फिर भी उसने सोच-विचारकर आज्ञा दी कि-"प्रात:काल तक सेठ सुदर्शन को सम्मान पूर्वक रखा जावे और प्रात:काल मेरे सामने उपस्थित किया जावे"।

प्रात:काल महाराजा दधिवाहन स्वयं सेठ के पास गये और उस पर कुपित न होते हुए रात्रि में महल में पहुंचने के विषय में जानकारी करने लगे कि तुम रात्रि के समय महल में कैसे और किस उद्देश्य से गये थे ? राजा के प्रश्न को सुनकर भी सुदर्शन अपने पूर्व नियमानुसार कुछ नहीं बोला। तव राजा ने सोचा कि-"यद्यपि इसका नहीं बोलना संदेह को उत्पन्न करता है फिर महल में चलकर ही वास्तविकता का पता लगाना चाहिये। महाराजा महल में आकर देखते हैं कि "अभयारानी अपने भवन में अस्त-व्यस्त दशा में पड़ी है और लम्वी लम्बी श्वासें ले रही है। राजा को देखकर रानी उठ खड़ी हुई राजा ने पूछा-"कुशल तो है न। राजा के इस प्रश्न को सुनकर रानी रौद्र रुप धारण कर बोली "हाँ यही कुशल है कि "मेरा सतीत्व वच गया।" सतीत्व वचने के सिवाय उस दुष्ट वनिये ने मेरी सव दुर्दशा कर डाली। यह देखो, मेरे वस्त्र फाड़ डाले, गाल एवं स्तन नोच डाले, लेकिन आपके प्रताप से मैं अपने सतीत्व

की रक्षा कर सकी हूँ, और उस दुष्ट को सिपाहियों द्वारा पकड़वा सकी हूँ। उसके लिये मैंने यह प्रण किया है कि "अब इस संसार में या तो वही रहेगा या मैं ही रहूंगी।" और जब तक वह जीवित है तब तक "अन्न जल ग्रहण नहीं करुंगी।

रानी की उपरोक्त बातें सुनकर राजा कुछ निर्णय नहीं कर पाया कि "वास्तविकता क्या है ? एक ओर तो उसे सुदर्शन के चरित्र पर विश्वास था और दूसरी ओर रानी उस पर ऐसा भीषण अभियोग लगा रही है। वह असमंजस में पड़ गया। वह सोचने लगा कि "इस घटना की सत्यता कैसे जानी जाय ?" वह पुनः सुदर्शन के पास आया और रानी के द्वारा लगाये गये अभियोगों को उसे सुनाकर पूछा कि—"मैं तुम पर विश्वास करता हूँ। रानी की बात पर तो संदेह भी कर सकता हूं"। इसलिये तुम कहो कि "वास्तविकता क्या है ?" राजा के इस प्रकार कई बार पूछने पर भी सुदर्शन ने अभया माता के सम्मान की रक्षा और उसे कष्ट से बचाने के लिये कुछ भी न बोला।

राजा ने सुदर्शन को यह भी आश्वासन दिया कि "सच्ची बात कहने पर कदाचित् तुम अपराधी भी सिद्ध हो जाओगे तो मैं तुम्हें क्षमा कर दूंगा" और यदि रानी का अपराध होगा तो उसे दण्ड दूंगा"। किन्तु तुम्हारे नहीं बोलने से तो उल्टे तुम ही अपराधी पाये जाते हो, जिसका परिणाम प्राण दण्ड तक हो सकता है।

इस प्रकार राजा ने अनेक उपायों से सुदर्शन से घटना की वास्तविक जानकारी जाननी चाही लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। राजा ने प्रधानादि और प्रतिष्ठित नागरिकों के द्वारा भी वास्तविकता जानने का प्रयत्न किया पर सुदर्शन ने तो

उपरोक्त विचारों से अपना मौन भंग नहीं किया। कहा है:—
"सच्चेसुवा अणवज्जंवयंति" दूसरे के हानिकारक सत्य को भी शास्त्रकारों ने झूठ ही माना है। मनुस्मृति—"सत्यंब्रूयात् प्रियंब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियं"।

"प्रिय सत्य बोलो, अप्रिय सत्य भी मत बोलो"। तब महाराजा ने प्रतिनिधियों की सलाह से घटनाक्रम पर प्रकाश डालते हुए यह निर्णय दिया कि–"सुदर्शन निम्न पांच अपराधों का अपराधी है–" १ उसने स्वयं के पद-प्रतिष्ठा और विश्वास के विरुद्ध कार्य किया है। २ उसने धर्म के नाम पर शहर में रहने की स्वीकृति लेकर मुझे ठगा है। ३ वह अनुचित रीति से महल में प्रविष्ठ हुआ। ४ माता के समान आदरणीया अभया महारानी का सतीत्व नष्ट करने का असफल प्रयास किया है। ५ मेरे प्रश्नों का उत्तर न देकर राजाज्ञा की अवज्ञा या उपेक्षा की है।

अत: "पांचों अपराधों के अपराधी सुदर्शन को प्राण दण्ड दिया जाकर उसे शूली पर चढ़ा दिया जावे"। उसकी पूर्व सेवाओं को ध्यान में रखकर उसकी हड़प की जाने वाली सम्पत्ति उसकी पत्नी एवं पुत्रों के लिये रहने दी जावे। यदि शूली पर चढ़ने के पूर्व भी सुदर्शन कुछ कहे या कोई अन्य बात ज्ञात होगी तो इस प्राण दण्ड की आज्ञा पर पुन: विचार भी किया जा सकेगा।

विजली की तरह यह समाचार सारे नगर में फैल गये। मनोरमा ने भी जब सुना तो उसे यह विचार हुआ कि–"पतिदेव तो कल पौषध में विराजे थे, पराये घर जाने के त्यागी और पर स्त्री को माता समझने वाले वे राजमहल में रात्रि को पकड़े गये, यह आश्चर्य की बात है। परन्तु मुझे यह अशुभ समाचार सुनकर

अधीर नहीं होते हुए अपने मनको परमात्मा के ध्यान में ही ल
देना चाहिये। "मैं पतिदेव का दर्शन तभी करूंगी जव उन प
लगा हुआ यह कलंक दूर होगा। मेरे पति सच्चे हैं यह मु
विश्वास है। वह अपने पुत्रों सहित परमात्मा के ध्यान
बैठ गई।"

नगर के लोगों के कहने पर कि "यह समय ध्यान करने
का नहीं है–तुम्हारे पति देव संकट में हैं और कुछ वोल नहीं र
हैं। तुम्हारे प्रयत्नों से शायद वे कुछ वोलकर वास्तविकता प्रक
कर दें, तो उनका प्राणदण्ड वच सकता है।" मनोरमा ध्यान में
मग्न बैठी रही।

शूली पर चढ़ाने का समय और स्थान नियत कर स
लोगों को सूचना करा दी गई कि-"सुदर्शन सेठ को अमुक अपरा
के फल स्वरुप अमुक समय और अमुक स्थान पर शूली
जायगी–सव लोग देखने के लिये उपस्थित हों। "यह घोषणा हो
ही नगर में हाहाकार मच गया।"

नियत-समय के पूर्व सुदर्शन सेठ को शूली पर चढ़ाने वा
व्यक्ति को पहनाये जाने वाले वस्त्रों को पहना कर अपराधी
लिये वजाये जाने वाला वाजा वजाते हुए नगर के प्रमुख-प्रमु
वजारों में से घुमाते हुए नियत स्थान पर ले चले। रास्ते
सुदर्शन का घर भी आया, किन्तु घर का कोई भी व्यक्ति उ
देखने नहीं निकला, लोग अनेक प्रकार की वातें करते जा रहे थे

राज्य के उच्चाधिकारियों ने सुदर्शन से कहा कि—अ
तुम शूली पर चढ़ने के पहिले अपने इष्ट का स्मरण एवं अप
कृत्य का पश्चाताप कर लो। यह सुनकर " सुदर्शन ने सागा
संथारा किया।" यदि में जीवित रहा तो मेरे पूर्व के व्रत हैं

लेकिन यदि मर गया तो १८ ही पापों का तीन करण-तीन योग से त्याग है। और मैं संसार के सभी जीवों को मित्र मानता हूँ। "मेरी अभया माता के प्रति भी मेरे हृदय में वैर नहीं है-किन्तु उसे तो मैं उपकारी मानता हूँ जिसकी कृपा से "आज मुझे १८ ही पापों का तीन करण तीन योग से त्याग करने का अवसर प्राप्त हुआ है" और वह नमस्कार मंत्र के ध्यान में मग्न हो गया। "नमस्कार मंत्र और उसके साथ लगी हुई शील शक्ति के प्रभाव से देवताओं का आसन कंपायमान हो गया। वे अपने अवधिज्ञान से सारी बातें जानकर उस शीलवान सुदर्शन सेठ की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए, उसकी इस संकट से रक्षा करने के लिये प्रयत्नशील बने।"

'सुदर्शन' शूली पर बैठाया जा रहा है, यह देखकर दर्शकगण हाहाकार कर रहे थे कि "अभी सुदर्शन का मस्तक फाड़कर शूली निकल जायगी" लेकिन जब उन्होंने देखा कि "सुदर्शन शूली के बदले सिंहासन पर बैठा है तथा उस पर छत्र चँवर ढूल रहे हैं और देवगण उसकी महिमा करते हुए जय-जयकार कर रहे हैं।" तब उन्हें आश्चर्य सहित अत्यधिक प्रसन्नता हुई। वे लोग भी जय-जयकार करने लगे। सबको ज्ञात हो गया कि "सुदर्शन निरपराधी एवं शीलवान है। बिजली की तरह यह खबर सारे नगर में फैल गई।"

मनोरमा एवं उसके पुत्रों को यह ज्ञात हो गया तो "वे भी ध्यान पूर्ण कर उस महापुरुष के दर्शनार्थ दौड़े आये"। लोगों ने मनोरमा का स्वागत करते हुए उसे सिंहासन पर सुदर्शन के पास बैठाया। राजा ने भी सुना। वह भी अविलंब वहां आया और "सुदर्शन के पैरों में गिरकर अपने अपराधों की क्षमा मांगने लगा।"

सभी लोगों के आग्रह पर सुदर्शन ने कहा कि—"मैंने यह निश्चय किया था कि मेरा यह भौतिक शरीर भले ही नष्ट हो जाय लेकिन इसकी रक्षा के लिये किसी दूसरे को कष्ट न होने दूंगा- मैं इस निश्चय से विचलित नहीं हुआ।"

इस दृढ़ता का ही प्रताप है कि "मेरे पर लगा हुआ सब कलंक भी मिट गया और मैं शूली से भी बच गया। आपको भी निष्काम धर्म–पालन करने के लिये प्रेरणा करता हूँ। लोगों ने सुदर्शन के उपदेशों को सुनकर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए उन्हें घर पधारने के लिये प्रार्थना की और सुदर्शन को सिंहासन पर ही बैठे रहने के लिये विवश कर दिया। मनोरमा उतर कर अपनी सखियों के साथ चली। "लोगों ने सिंहासन उठाकर जय–जयकार करते हुए सुदर्शन को घर पहुँचाया। सुदर्शन ने राजा से अपनी अभया माता की सुरक्षा का आश्वासन प्राप्त किया, किन्तु उक्त समाचार सुनकर उसने आत्म हत्या करली।

षष्टम् दिवस–तपाराधना

"जो आनंद मंगल चहावे वह पर्व पर्यूषण ध्यावे"

वन्धुओं, कल आपने सुना कि "अर्जुनमाली भगवान महावीर के पास दीक्षित होगया"।

अव शास्त्रकार उनके विषय में आगे क्या कहते है— शास्त्रीय वाचन पृ. १२३ से १४४ तक. वीच में संगीत।

वन्धुओं,

आपने अर्जुनमाली के जीवन का चित्र–अंतगढ़ सूत्र के माध्यम से सुना है (देखा) कैसा ? "अधम व्यक्ति भी, जब अपने जीवन का परिवर्तन क्षण भर में कर सकता है तो, हम लोगों की

दशा तो कितनी सुन्दर और परिमार्जित है ?" कहा है :—
"जे कम्मेसूराते धम्मेसूरा" हम भी अपनी भावनाएं जागृत कर धर्म में शूरवीरता प्रकट कर सकते हैं। इसके लिये सबसे पहिले आन्तरिक कर्मशत्रु रागद्वेष कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य पर-परिवाद आदि से निवृत्ति लेनी पड़ेगी, अर्थात् अपने अंतर में रहे हुए इन शत्रुओं का दमन करना पड़ेगा। दमन क्या करना पड़ेगा हमें इनकी ओर से उपेक्षा धारण करनी पड़ेगी।

अपने दुष्ट मित्र का यदि हम हमेशा मान-सम्मान करते रहेंगे तो वह हमारा पीछा नहीं छोड़ेगा और जिस दिन हम उसकी दुष्टता से सावधान होकर उसका मान-सम्मान नहीं करेंगे, उसी दिन से वह स्वयं किनारा कर लेगा। उसी प्रकार हम भी इन राग-द्वेष आदि शत्रुओं की दुष्टता से सावधान होकर इनका मान-सम्मान न करते हुए, उपेक्षा करने लग जावेंगे तो वे स्वयं अपने आप हमारा पीछा छोड़ देंगे। "उस स्थिति से मुकावला करने के लिये शास्त्रकारों ने तप की महिमा गाई है।"

काकंदी नगरी के धन्नाजी ने तप द्वारा अपने कर्मों की किस प्रकार निर्जरा की है ? उसका वर्णन 'अनुत्तरोववाई' सूत्र में शास्त्रकारों ने किया है।

काकंदी नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस नगरी में भद्रा नाम की एक सार्थवाहिनी रहती थी। उस के पास वहुत ऋद्धि थी। उसके धन्ना नामक पुत्र बहुत ही सुन्दर एवं सुरुप था। पाँच धाय माताएं (१ दुग्ध पिलाने वाली, २ स्नान कराने वाली, ३ वस्त्रा भूषण पहनाने वाली, ४ गोद में खिलाने वाली, और ५ क्रीड़ा कराने वाली) उसका पालन-पोषण कर रही थी।

धन्नाकुमार ने योग्यवय में ७२ कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया जब वह युवक हो गया तब भद्रा सार्थवाहिनी ने उसका ३२ इब्भ (करोड़पति) सेठों की ३२ कन्याओं के साथ एक ही दिन में एक साथ विवाह किया। ३२ ही पुत्र-वधुओं के लिये बड़े-ऊँचे ३२ महल बनवाये और उन सबके बीच में धन्नाकुमार के लिये अनेक स्तम्भों वाला बहुत ही सुन्दर भव्य एक महल बनवाया। धन्नाकुमार बहुत आनन्द पूर्वक समय बिताने लगा।

एक समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए काकंदी नगरी पधारे। नगर की परिषद एवं जितशत्रु राजा तथा धन्नाकुमार भी भगवान के दर्शनार्थ आये। भगवान का धर्मोपदेश सुनकर धन्नाकुमार संसार से विरक्त हो गया। अपनी माता भद्रासार्थवाहिनी से आज्ञा प्राप्तकर उसने भगवान से दीक्षा अंगीकार की। जिस दिन दीक्षा ली, उसी दिन से धन्नाकुमार ने ऐसा अभिग्रह किया कि "आज से मैं यावज्जीवन बेले २ पारणा करूंगा।" पारणे में आयंबिल करूंगा। आयंबिल में रूक्ष आहार भी ऐसा होगा कि—"जिसमें घृतादि किसी प्रकार का लेप न लगा हो।" घर वालों के खालेने के पश्चात् बचा हुआ बाहर फैंकने योग्य (उच्छिष्ठ) तथा बावा जोगी-कृपण-भिखारी आदि जिसकी वांछा न करे, ऐसे-तुच्छ-आहार की गवेषणा करता हुआ विचरूंगा। इस प्रकार कठोर अभिग्रह धारण कर महादुष्कर तपस्या करते हुए धन्नामुनि विचरने लगे। कभी आहार मिला तो पानी नहीं, और पानी मिले तो आहार नहीं। जो कुछ आहार मिल जाता, धन्नामुनि चित्त की आकुलता-व्याकुलता एवं उदासीनता रहित उसी में संतोष करते किन्तु कभी भी मन में दीन भाव नहीं लाते।

जिस प्रकार सर्प बिल में प्रवेश करते समय रगड़ लग जाने के डर से अपने शरीर का इधर उधर स्पर्श नहीं होने देता-किन्तु एक दम सीधा बिल में प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार धन्नामुनि भी आहार करते। अर्थात् स्वाद लेने की दृष्टि से उसे मुंह में इधर-उधर न लगाते हुए सीधा गले में उतार लेते।

इस प्रकार उग्र तपस्या करने के कारण धन्नामुनि का शरीर बहुत दुबला हो गया, यहां तक कि "चलते-फिरते-उठते-बैठते-बोलते समय भी उन्हें कष्ट होता था"। शरीर तो सूख गया किन्तु "तपस्या के तेज से वे सूर्य की तरह चमक रहे थे।" ग्रामानुग्राम-विचरण करते हुए भगवान राजगृही पधारे। तब श्रेणिक महाराजा ने विधिवत् भगवान को वंदना-नमस्कार कर प्रश्न किया भगवन् ! इन सभी साधुओं में महादुष्कर क्रिया एवं महा-निर्जरा को करने वाला कौन साधु है ? तब "भगवान ने कहा कि "हे श्रेणिक ! इन सभी साधुओं में धन्नामुनि महादुष्कर क्रिया एवं महा निर्जरा करने वाला है। श्रेणिक राजा धन्नामुनि के पास आकर विधिवत् वंदना-नमस्कार करते हुए उनकी स्तुति करते हैं।"

अपना अंतिम समय निकट जान कर धन्नामुनि ने कड़ाही स्थविरों (संथारे में सहायता देने वाले साधुओं) के साथ विपुल गिरि पर उनकी साक्षी से संलेखना-संथारा कर नव माह का संयम पालकर (एक महीने संलेखना युक्त) यथावसर कालकर अनुत्तर विमान के सर्वार्थ सिद्ध नामक देवलोक में देवरुप से उत्पन्न हुए। वहां से चवकर महाविदेह क्षेत्र से मुक्त होंगे।

धन्नाजी ने एक रसना इंद्रिय पर अधिकार किया अर्थात् उसे भूखी रखी तो शेष चार इंद्रियां तृप्त होगई जो व्यक्ति

रसना इंद्रिय को तृप्त करता है तो उसकी शेष चारों इंद्रियां भूखी हो जाती हैं और अपने २ विषय को प्राप्त करने की लालसा में उस व्यक्ति को इधर-उधर भटकाती हैं। अतः विवेकी पुरुषों को चाहिये कि आत्मिक और शारीरिक-शुद्धि के लिये तप की यथा शक्ति आराधना करे तभी वह आलोचना करने की भूमिका पर आरूढ़ हो सकता है। विना आलोचना एवं शुद्धिकरण किये आत्मा आराधक नहीं हो सकता और अनाराधक की सुगति नहीं होती।

बन्धुओं! आज आपने पोलासपुरी नगरी के राजकुमार एवंता मुनि के बाल्य जीवन का वर्णन सुना। "छोटा बालक एवंता क्या समझता है। ये संत सतियांजी बालक बालिकाओं को वहका कर उन्हें न घर के रखते हैं न घाट के।" ऐसा चिंतन आजका प्रबुद्ध वर्ग कर सकता है किन्तु इस वर्णन में आपने सुना ही होगा कि श्री गौतम स्वामी ने क्या उस बालक को वहकाया? वह बालक स्वयं ही मुनिराज को देख कर प्रभावित हुवा और उनकी अंगुली पकड़ कर महलों में ले गया। उसे इस प्रकार आते देख कर माता अत्यधिक प्रसन्न होती है "आज भी समझदार और संस्कारी माताएँ ऐसे प्रसंगों पर खुश होती है।"

जव श्री गौतम स्वामीजी गोचरी लेकर जाने लगे तव वह वालक भी उनके साथ जाने लगा तो माता ने उसे रोका नहीं। प्रभु महावीर ने उस अकेले बालक को भी धर्मोपदेश दिया। उन्हें ज्ञान में झलकने लगा कि यह वालक चरम शरीरी है। कहा भी है:—

"जे पुन्नस्स कत्थइ से तुच्छस्स कत्थइ" आचारांग सूत्र अर्थात् जो उपदेश विशेप या वड़े व्यक्ति को दिया जाता है, वही उपदेश सामान्य या बालक को भी दिया जाता है।

आज कतिपय श्रमण वर्ग में इस विषय में विभिन्न प्रकार की प्रवृति देखी जाती है। प्रभावशाली या कोई बड़ा आदमी आयेगा तो उससे बातें करने में विशेष रूचि लेते देखे जाते हैं और सामान्य या बालक आयेगा तो उपेक्षा देखी जाती है। यथा शक्य ऐसा नहीं होना चाहिये।

प्रभु ने उपदेश दिया पर उसे ऐसा नहीं कहा कि तुम दीक्षा ले लो। वीतराग वाणी से प्रभावित बालक ने जब कहा कि-मैं संसार से विरक्त होकर दीक्षित होना चाहता हूं तो भी उसे यही कहा कि जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो पर धर्म कार्य में प्रमाद न करो।

बालक जब आज्ञा मांगता है तो माता कहती है- "अरे वालूड़ा ! तू क्या जानता है ? साधु जीवन कैसा होता है ? यह लो गेंद और बालकों के साथ खेलो।" तब बालक कहता है— "जाणू सो नहीं जाणू माता, नहीं जाणू सो जाणू" इसे सुनकर माता आश्चर्य चकित हो जाती है।

माता पिता उसे संसारी प्रलोभनों में फंसाने के लिये राज्यासीन करते हैं और राज्याभिषेक करने के बाद पूछते हैं— "बोलो-बोलो हमारे लिए आपकी क्या आज्ञा है ?"

प्रलोभनों में नहीं फंसता हुआ बालक कहता है कि— "खजाने से तीन लाख स्वर्ण मुद्राएँ निकाल कर दो लाख के ओघे पात्रे मंगवाओ और मेरे सिर मुंडन करने वाले नाई को एक लाख से पुरस्कृत करो।"

दीक्षा लेने के दूसरे दिन प्रातः वर्षा होने के बाद वे अन्य संतों के साथ वड़ी नीत निवारण हेतु जंगल में गये और अन्य संतों के वापस लौटने में जब विलंब हुआ तब वहीं मिट्टी की पाल बना कर अपनी छोटी सी पात्री पानी में तिराते हुवे मधुर स्वर से गाने लगे कि-"नाव तिरे म्हारी नाव तिरे।"

उक्त स्थिति पर संतों के मन में भाव उठे कि भगवान भी छोटे २ बालकों को दीक्षा दे देते हैं, ये क्या समझते है? जब उपाश्रय पर पहुंचे तो घट-घट के भावों को जानने वाले प्रभु ने कहा—"ये चरम शरीरी आत्मा है। इनकी हीलना निंदना मत करो।" तब उन्होंने बाल मुनि से क्षमा मांगी। देखा आपने जैन दर्शन का आदर्श।

आज इस विषय में कितना उहा पोह होता है। एक दृष्टि से होना भी चाहिये। विरक्तात्मा की योग्यता की परख किये बिना दीक्षा देना उचित भी नहीं है।

श्रमण वर्ग के उपदेश से प्रभावित होकर कोई भी बालक आदि आत्म कल्याणार्थ उद्यमी बनता है तो उसे ज्ञान ध्यान सिखाना, श्रमणाचार का दिग्दर्शन कराना, उनके पारिवारिकों को समझा कर विहारादि में साथ चलाना जिससे उनमें विहारादि के कष्टों, सर्दी गर्मी भूख प्यास आदि के परिषहों को सहन करने की क्षमता की पूर्णतः अनुभूति हो जाये तब उनके पारिवारिक सदस्यों की अनुमति से दीक्षा दी जाती है तो ऐसी स्थिति में उसे अनुचित नहीं कहा जा सकता है।

सप्तम् दिवस [भावाराधना]

संगीत—"तुम खूब करो धर्म ध्यान।"

वन्धुओं, अंतगढ़ सूत्र का कल सातवां वर्ग पूर्ण हुआ। आठवें वर्ग का प्रारम्भ करते हुए जंबू स्वामी, सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं:—

शास्त्र-वाचन पृ. १४५ से १६६ तक-वीच-वीच में पृ. १५५ पर संगीत—

"काली ओ राणी" तप वड़ो रे संसार में" —

वन्धुओं! आज आपने महारानी काली-सुकाली आदि के जीवन की वातें सुनी।

किस प्रकार से प्राप्त-ऋद्धि-समृद्धि का उत्कृष्ट भावना पूर्वक त्याग कर ज्ञान-दर्शन-चारित्र एवं तप की साधना में उन्होंने जीवन को लगाया। शरीर से ममत्व त्याग कर किस प्रकार उसे जर्जरित कर दिया ?

उन्होंने देखा कि:—अव इस नाशवान शरीर से किसी प्रकार का कस नहीं निकल रहा है इसलिए जव तक शरीर में उत्थान, कर्म-वल वीर्य-पुरुषाकार पराक्रम है, तव तक मैं संलेखना संथारा कर पंडित मरण पूर्वक ही देह-त्याग क्यों न करू ? यह देह तो आगे-पीछे छूटेगा ही।

इस प्रकार भावों की विशुद्धि से उन्होंनें अपना अंतिम समय सुधार कर सिद्ध-वुद्ध और मुक्त हो गईं।

यह भाव-विशुद्धि ध्यान की प्रक्रिया साधने से ही प्राप्त होती है। ध्यान की साधना से साधक जव जड़ चैतन्य के भेद ज्ञान को परिपूर्ण रूप से प्राप्त कर लेता है, तभी वह अपना इहलोक और परलोक सुधारने के लिये पंडित-मरण अंगीकार करने के लिये समर्थ वनता है। पंडित-मरण सलेखना संथारा पूर्वक होता है। कहा है—

मरणो-मरणो सारा कहवे मरे सभी नर नारी रे।
मरवा-पेली जो मरजावे तो वलिहारी रे ॥ मरणो जाणणो

संलेखना में मृत्यु के पूर्व ही मरना होता है। अर्थात् साधक जव अपने शरीर से ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप की आराधना करते-करते यह जान लेता है कि "अव इस शरीर से विशेष साधना संभव नहीं है तव वह विचार करता है कि जव तक शरीर में उत्थान-कर्म-वल-वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम

है, तभी तक मुझे संलेखना संथारा कर लेना चाहिये।" और वह अपने उक्त विचारों को कार्य रूप में परिणित करने के लिये विधि प्रारम्भ करता है।

करले श्रृंगार चतुर अलवेली, चतुर अलवेली।
साजन के घर जाना होगा।
न्हाले धोले शीष गुंथाले, वापस तो नहिं आना होगा। करले॥
माटी ओढ़न माटी विछावन, माटी का सिरहाना होगा।
कहत कवीर सुनोभई साधो ज्योत में ज्योत मिलाना होगा। करले॥

चउवीसत्थव–

चउवीसत्थव की विधि करते हुए जहां 'करेमि भंते' का पाठ कहा जाता है वहां 'अपच्छिम मरणांतिय संलेखना' का पाठ कहकर दो नमोत्थुणम् का पाठ कहना है। इसके पूर्व वह जिस स्थान पर 'परठना–परठाना' होता है उस स्थान की भी सम्यक् प्रति लेखना करे।' फिर यथा योग्य शय्या–संथारा की पूंजन प्रति लेखन कर 'शय्या संस्तारक पर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह कर पर्यंकासन अर्थात् पालखी लगाकर बैठे। दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर लगाकर इस प्रकार कहे—'नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जावसंपत्ताणं' इस प्रकार अनंत सिद्ध भगवंतों की स्तुति पूर्वक नमस्कार करे, "नमोत्थुणं, अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपविउकामाणं' इस प्रकार वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र में विराजमान वीस विहरमानजी महाराज की स्तुति पूर्वक वन्दना नमस्कार करे, अपने धर्माचार्यजी महाराज धर्मगुरु पूज्य श्री १००८ श्री (अपने गुरु का नाम) महाराज को नमस्कार करे। साधु-साध्वीजी को नमस्कार करे। श्रावक–श्राविकाओं को यावत् ८४ लाख जीव योनी के सभी जीवों से

सभी जीवों से क्षमा-याचना करे। फिर पूर्व के जो जो व्रत अंगीकार किये हों, उनमें लगे हुए दोषों की आलोचना करे, निंदना करे एवं निःशल्य (माया-नियाणा, मिथ्यात्व इन तीन शल्य से रहित) होकर सभी प्रकार के प्राणातिपात मृषावाद आदि १८ही पाप स्थानों की एवं सभी अकरणीय समस्त कार्यों की तीन करण तीन योग से प्रवृत्ति का त्याग करे और तीन आहार या चारों आहारों का (यथाशक्ति) त्याग करे, यावज्जीवन के लिये गुरु महाराज या स्थानीय-संघपति या पदाधिकारी का आगार रखता हुआ सर्व सावद्य योगों का त्याग करे और काल की आकाँक्षा नहीं करता हुआ इस प्रिय मनोज्ञ शरीर को अंतिम श्वासोश्वास तक वोसरा देवे। और समभाव-पूर्वक ज्ञान-दर्शन चारित्र एवं तपकी आराधना करता हुआ समय व्यतीत करे।

तप के प्रभाव से प्राप्त या अप्राप्त ऋद्धि-सम्पत्ति सुख शान्ति की आकांक्षा-आसक्ति या इच्छा न करे। लोक में "मुझे इस तप के प्रभाव से ऋद्धि-सम्पत्ति सुख-शान्ति प्राप्त हो" यह भी कामना न करे।

संथारा की अवस्था में मान, सम्मान, पूजा-प्रतिष्ठा होती देखकर अधिक समय तक जीवन की इच्छा न करे। और इनके अभाव में " जल्दी मर जाऊँ " ऐसा भी—चिंतन न करे। तथा तप के प्रभाव से विमारी के नाश होने से सांसारिक-विषय-भोगों को भी आकांक्षा न करे। देवता-मनुष्य एवं तिर्यंच सम्बन्धी-उपसर्ग प्राप्त होने पर विचलित न होता हुआ मनोवल को दृढ़ रखे। यह संथारा तीन प्रकार का होता है :—

(१) **भत्त-प्रत्याख्यान—** यावज्जीवन- तिविहार या चौविहार किया जाता है, इसमें अन्य की सेवा कर सकते हैं,करा सकते हैं।

है, तभी तक मुझे संलेखना संथारा कर लेना चाहिये।" और वह अपने उक्त विचारों को कार्य रूप में परिणित करने के लिये विधि प्रारम्भ करता है।

करले श्रृंगार चतुर अलवेली, चतुर अलवेली।
साजन के घर जाना होगा।
न्हाले धोले शीष गुंथाले, वापस तो नहिं आना होगा। करले॥
माटी ओढ़न माटी विछावन, माटी का सिरहाना होगा।
कहत कवीर सुनोभई साधो ज्योत में ज्योत मिलाना होगा। करले

चउवीसत्थव–

चउवीसत्थव की विधि करते हुए जहां 'करेमि भंते' का पाठ कहा जाता है वहां 'अपच्छिम मरणांतिय संलेखना' का पाठ कहकर दो नमोत्थुणम् का पाठ कहना है। इसके पूर्व वह जिस स्थान पर 'परठना–परठाना' होता है उस स्थान की भी सम्यक् प्रति लेखना करे।' फिर यथा योग्य शय्या–संथारा की पूंजन प्रति लेखन कर 'शय्या संस्तारक पर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह कर पर्यंकासन अर्थात् पालखी लगाकर बैठे। दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर लगाकर इस प्रकार कहे—'नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जावसंपताणं' इस प्रकार अनंत सिद्ध भगवंतों की स्तुति पूर्वक नमस्कार करे, "नमोत्थुणं, अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपविउकामाणं' इस प्रकार वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र में विराजमान वीस विहरमानजी महाराज की स्तुति पूर्वक वन्दना नमस्कार करे, अपने धर्माचार्यजी महाराज धर्मगुरु पूज्य श्री १००८ श्री (अपने गुरु का नाम) महाराज को नमस्कार करे। साधु-साध्वीजी को नमस्कार करे। श्रावक-श्राविकाओं को यावत् ८४ लाख जीव योनी के सभी जीवों से

भी जीवों से क्षमा-याचना करे। फिर पूर्व के जो जो व्रत ंगीकार किये हों, उनमें लगे हुए दोषों की आलोचना करे, ंदना करे एवं निःशल्य (माया-नियाणा, मिथ्यात्व इन तीन ाल्य से रहित) होकर सभी प्रकार के प्राणातिपात मृषावाद ादि १८ही पाप स्थानों की एवं सभी अकरणीय समस्त कार्यों की ीन करण तीन योग से प्रवृत्ति का त्याग करे और तीन आहार ा चारों आहारों का (यथाशक्ति) त्याग करे, यावज्जीवन के लिये गुरु महाराज या स्थानीय-संघपति या पदाधिकारी का आगार रखता हुआ सर्व सावद्य योगों का त्याग करे और काल की आकांक्षा नहीं करता हुआ इस प्रिय मनोज्ञ शरीर को अंतिम श्वासोश्वास तक वोसरा देवे। और समभाव-पूर्वक ज्ञान-दर्शन चारित्र एवं तपकी आराधना करता हुआ समय व्यतीत करे।

तप के प्रभाव से प्राप्त या अप्राप्त ऋद्धि-सम्पत्ति सुख शान्ति की आकांक्षा-आसक्ति या इच्छा न करे। लोक में "मुझे इस तप के प्रभाव से ऋद्धि-सम्पत्ति सुख-शान्ति प्राप्त हो" यह भी कामना न करे।

संथारा की अवस्था में मान, सम्मान, पूजा-प्रतिष्ठा होती देखकर अधिक समय तक जीवन की इच्छा न करे। और इनके अभाव में " जल्दी मर जाऊँ " ऐसा भी—चिंतन न करे। तथा तप के प्रभाव से बिमारी के नाश होने से सांसारिक-विषय-भोगों की भी आकांक्षा न करे। देवता-मनुष्य एवं तिर्यंच सम्बन्धी-उपसर्ग प्राप्त होने पर विचलित न होता हुआ मनोबल को दृढ़ रखे। यह संथारा तीन प्रकार का होता है :—

(१) **भक्त-प्रत्याख्यान—** यावज्जीवन- तिविहार या चौविहार किया जाता है, इसमें अन्य की सेवा कर सकते हैं,करा सकते हैं।

(२) इंगित-मरण—उपरोक्त त्याग पूर्वक स्थान की मर्यादा में रहे।

(३) पादोपोगमन- वृक्ष की कटी हुई डाल की तरह-निश्चल चौविहार में रहे। इसमें अन्य किसी की सेवा न ले। न करे

बन्धुओं :—

पर्यूषण-पर्व के सातवें दिन के प्रसंग से भाव-विशुद्धि प विचार किया जा रहा है। कहा है—

"मनः एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः"

भावना से ही कर्म का वंध होता है और भावना से ही कर्मों से मुक्ति होती है। "हमारी भावना निर्मल एवं पवित्र बने" इसके लिये ही ध्यान-विषयक-वर्णन प्रस्तुत किया गया। ध्यान मन की एकाग्रता में सहायक होता है, पर होना चाहिये विधि पूर्वक। ध्यान में भी कभी-कभी ऐसे कारण उपस्थित हो जाते हैं, जिससे मन विचलित हो जाता है। ध्यान मन को पुनः स्थिर करने में सहायक हो जाता है।

आपने प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का नाम सुना होगा भगवान महावीर के समवशरण के वाहर भगवान से आज्ञा प्राप्त कर उन्होंने ध्यान की साधना प्रारंभ की। वे ध्यान में एकाग्र बने हुए थे—उस समय मगधाधिपति महाराजा श्रेणिक चतुरंगिणी सेना सजाकर भगवान के दर्शनार्थ आ रहे थे। आगे-आगे सुमुख एवं दुर्मुख नामक राजा के कर्मचारी मार्ग प्रशस्त करते हुए चल रहे थे दोनों वार्तालाप में मस्त वने हुए रास्ते में आगे बढ़ रहे थे, जहां प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ध्यान में खड़े थे। उन्हें देख कर, सुमुखने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि—देखो ये महाराजा प्रसन्नचन्द्र

जिन्होंने अपने छोटे लड़के को राज्य देकर, ५०० मंत्रियों की देखभाल में सौंपकर संसार से विरक्त हो गये, और अब यहाँ सब मोह-माया से निर्लिप्त किस प्रकार ध्यान में खड़े हुए आतापना लेकर कर्मों की निर्जरा कर रहे हैं। इतने में तो दुमुंख बोला कि "अरे तुम्हें नहीं मालूम ! ये तो इधर इस प्रकार ध्यान में खड़े हुए कर्मों की निर्जरा कर रहे हैं, किन्तु उधर जिन विश्वासपात्र मंत्रियों के भरोसे उन्होंने उस छोटे राजकुमार को राज्य दिया वे मंत्री ही अब उसके साथ विश्वासघात करने पर तुले हुए हैं। वे उसे राज्य से हटाकर स्वयं राज्य हड़पना चाहते हैं।

ये शब्द ध्यानस्थ राजर्षि प्रसन्नचन्द्र के कर्णगोचर हुए। उनके विचारों में परिवर्तन हुआ। अरे, जिन मन्त्रियों पर मैंने विश्वास किया, वे ही राजकुमार से बगावत कर रहे हैं। ठीक, पर मेरे रहते वे अपने कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। मन का भूत सवार हुआ विचार ही विचार में उन्होंने मंत्रियों के साथ भयंकर युद्ध प्रारंभ कर दिया और ४९९ मंत्रियों को मार डाला। एक मंत्री बच रहा, और उनके मानसिक कल्पना के सब बाण आदि शस्त्र समाप्त हो गये। तब उन्होंने उसे अपने सिर-स्त्राण (मुकुट) से समाप्त करने के विचार से हाथ मस्तक पर लगाया। मुण्ड-मस्तक का स्पर्श होते ही उन्हें अपने स्वरूप का ध्यान हुआ। इतनी देर तक वे पर-रूप रमण कर रहे थे। उन्होंने सोचा, अरे, यह क्या ? मैं तो गृहस्थावस्था का त्याग कर द्रव्य और भाव से मुंडित हो गया था अब यह क्या कर रहा हूं ? विचारों की धारा बदलती है, पश्चाताप करते हैं....? "किसका पुत्र और किसका राज्य" ? मैंने उस शाश्वत राज्य के लिये तो भौतिक-राज्य का त्याग किया और अन[illegible] के

(२) **इंगित-मरण**–उपरोक्त त्याग पूर्वक स्थान की मर्यादा में रहे।

(३) **पादोपोगमन-** वृक्ष की कटी हुई डाल की तरह-निश्चल चौविहार में रहे। इसमें अन्य किसी की सेवा न ले। न करे।

वन्धुओं :—

पर्यूषण–पर्व के सातवें दिन के प्रसंग से भाव-विशुद्धि पर विचार किया जा रहा है। कहा है—

"मनः एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः"

भावना से ही कर्म का वंध होता है और भावना से ही कर्मों से मुक्ति होती है। "हमारी भावना निर्मल एवं पवित्र वने" इसके लिये ही ध्यान-विषयक-वर्णन प्रस्तुत किया गया। ध्यान मन की एकाग्रता में सहायक होता है, पर होना चाहिये विधि-पूर्वक। ध्यान में भी कभी–कभी ऐसे कारण उपस्थित हो जाते हैं, जिससे मन विचलित हो जाता है। ध्यान मन को पुनः स्थिर करने में सहायक हो जाता है।

आपने प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का नाम सुना होगा भगवान महावीर के समवशरण के वाहर भगवान से आज्ञा प्राप्त कर उन्होंने ध्यान की साधना प्रारंभ की। वे ध्यान में एकाग्र वने हुए थे–उस समय मगधाधिपति महाराजा श्रेणिक चतुरंगिणी सेना सजाकर भगवान के दर्शनार्थ आ रहे थे। आगे-आगे सुमुख एवं दुर्मुख नामक राजा के कर्मचारी मार्ग प्रशस्त करते हुए चल रहे थे दोनों वार्तालाप में मस्त वने हुए रास्ते में आगे वढ़ रहे थे जहां प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ध्यान में खड़े थे। उन्हें देख कर, सुमुख ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि—देखो ये महाराजा प्रसन्नचन्द्र

जिन्होंने अपने छोटे लड़के को राज्य देकर, ५०० मंत्रियों की देखभाल में सौंपकर संसार से विरक्त हो गये, और अब यहाँ सब मोह–माया से निर्लिप्त किस प्रकार ध्यान में खड़े हुए आतापना लेकर कर्मों की निर्जरा कर रहे हैं। इतने में तो दुर्मुख बोला कि "अरे तुम्हें नहीं मालूम ! ये तो इधर इस प्रकार ध्यान में खड़े हुए कर्मो की निर्जरा कर रहे हैं, किन्तु उधर जिन विश्वासपात्र मंत्रियों के भरोसे उन्होंने उस छोटे राजकुमार को राज्य दिया वे मंत्री ही अब उसके साथ विश्वासघात करने पर तुले हुए हैं। वे उसे राज्य से हटाकर स्वयं राज्य हड़पना चाहते हैं।

ये शब्द ध्यानस्थ राजर्षि प्रसन्नचन्द्र के कर्णगोचर हुए। उनके विचारों में परिवर्तन हुआ। अरे, जिन मन्त्रियों पर मैंने विश्वास किया, वे ही राजकुमार से बगावत कर रहे हैं। ठीक, पर मेरे रहते वे अपने कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। मन का भूत सवार हुआ विचार ही विचार में उन्होंने मंत्रियों के साथ भयंकर युद्ध प्रारंभ कर दिया और ४९९ मंत्रियों को मार डाला। एक मंत्री बच रहा, और उनके मानसिक कल्पना के सब बाण आदि शस्त्र समाप्त हो गये। तब उन्होंने उसे अपने सिर–स्त्राण (मुकुट) से समाप्त करने के विचार से हाथ मस्तक पर लगाया। मुण्ड-मस्तक का स्पर्श होते ही उन्हें अपने स्वरुप का ध्यान हुआ। इतनी देर तक वे पर-रूप रमण कर रहे थे। उन्होंने सोचा, अरे, यह क्या ? मैं तो गृहस्थावस्था का त्याग कर द्रव्य और भाव से मुंडित हो गया था अब यह क्या कर रहा हूं ? विचारों की धारा बदलती है, पश्चाताप करते हैं....? "किसका पुत्र और किसका राज्य" ? मैंने उस शाश्वत राज्य के लिये तो भौतिक-राज्य का त्याग किया और अब उसी के

लिये मैं स्वरुप को भूल कर पर-रूप रमण कर रहा हूँ। धिक्कार है मुझे ? इस तरह वैचारिक परिवर्तन करते २ अप्रमत्त दशा से आगे बढते हैं। ८वें ९वें १०वें गुण स्थान से ११वें को उल्लंघन कर मोह कर्म के नष्ट होते ही १२ वें गुण स्थान को प्राप्त कर लेते हैं और अन्तर्मुहूर्त काल में शेप तीन — ज्ञानावरणीयादि घाती कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञानी वन जाते हैं। आकाश में देवदुंदुभी वजती है। देवता केवल-ज्ञान का उत्सव मनाते हैं।

इधर जब श्रेणिक महाराजा उन ध्यान में मग्न श्री प्रसन्न-चन्द्र राजर्षि के दर्शन कर भगवान के समोशरण में पधारते हैं, तव विधिपूर्वक वंदन नमस्कार कर भगवान से प्रश्न करते हैं कि-अहो भगवन ! अभी मैंने समवशरण के वाहर जिन मुनि के दर्शन किये, वे इस समय यदि आयुष्य पूर्ण करें तो किस गति में जावें? भगवान ने कहा कि "इस समय काल करें तो पहली नरक में जावे महाराज श्रेणिक ने उत्तर सुनकर अनुमान लगाया कि" भगवान मेरे भावों को शायद नहीं समझ पाये हैं तभी तो वे उन ध्यानस्थ मुनि के मेरे प्रश्न के उत्तर में पहली नरक की गति वता रहे हैं। उसने स्पष्ट करते हुए प्रश्न किया। तव भगवान ने फरमाया कि "अव यदि काल करें तो दूसरी नरक में जावें। इस प्रकार ज्यों ज्यों बढ़ती हुई जिज्ञासा पूर्वक श्रेणिक महाराज प्रश्न करते गये त्यों-त्यों भगवान एक एक नरक की वृद्धि करते हुए अंत में उन्हें सातवीं नरक का अधिकारी वताया और उसके वाद के प्रश्न के उत्तर में देवलोक की गति वताते हुए उन्हें सर्वार्थ-सिद्ध विमान का अधिकारी वताया।

इतने में ही देव-दुन्दुभि की आवाज सुनकर महाराज श्रेणिक ने भगवन् से पूछा, भगवान ! यह देव-दुन्दुभि की आवाज इस समय क्यों हुई? तव भगवान ने फरमाया की "जिसके विपय

में तुम प्रश्न कर रहे हो, उन महात्मा को केवलज्ञान प्राप्त होगया है और देवगण उनका "केवलज्ञान-महोत्सव" मनाने के लिये उपस्थित हुए हैं। श्रेणिक महाराज के स्पष्टीकरण के प्रश्न पर भगवान ने उन सारी बातों का वर्णन किया जो राजर्षि प्रसन्नचन्द्र के मानसिक विचारों से फलित होरही थी। भगवान ने फरमाया कि-"मानसिक शक्ति अत्यंत प्रवल होती है, उस प्रबल मानसिक शक्ति का सदुपयोग भी किया जा सकता है, अपने आपे में रहकर और दुरुपयोग भी किया जा सकता है स्वरुप को भूलकर पर-रुप में रमण करते हुए"।

बन्धुओं,

आपने देखा कि "प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ने ध्यानावस्था में ही भावों की मलिनता से कैसे कर्म के दलिकों को इकट्ठा कर लिया और कुछ ही क्षणों में, ध्यान एवं भावों की विशुद्धि से, उन्हें क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया।

साधक यदि सम्यक् दर्शन एवं ज्ञान पूर्वक सम्यक् आराधना करता है तो अल्प समय में ही वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सुखी हो सकता है।

"पढ़मं नाणं तओ दया एवं चिट्ठई सव्व संजए।"
अन्नाणी किं काही किं वानाहीइ सेय पावगं॥

अष्टम दिवस

आत्म शुद्धि

संगीत—"धन्य धन्य है दिवस आज का सुनो सभी इंसान
संवत्सरी आया पर्व महान।"

बन्धुओं !

कल आपने अंतगढ़ सूत्र के आठवें वर्ग के पांच अध्ययनों में श्रेणिक राजा की रानियों के विषय में वर्णन सुना। आज भी उन्हीं श्रेणिक महाराजा की महाकृष्णा आदि रानियों के विषय में श्री जंबूस्वामी के प्रश्न पर श्री सुधर्मा स्वामी फरमा रहे हैं।

शास्त्रीय वाचन—पृष्ठ १६७ से १८५ तक पूर्ण।

बन्धुओं !

आज का दिन पर्यूषण पर्व का चरम दिवस है। विगत सात दिनों में अंतगढ़ सूत्र के माध्यम से संसार का अंत करने वाली ९० महान् आत्माओं के जीवन दर्शन श्रवण का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने अपनी आत्मा का किन-उत्कृष्ट परिणामों के साथ कल्याण कर हमारे सामने "एक आदर्श उपस्थित किया है।" हम उनका अनुकरण कर "अपने इस मानव जीवन से संसार का अंत करने की साधना कर सकते हैं"। हमने इन सात दिनों में "कितनी साधना की, जीवन की कितनी शुद्धि की ? आज उसका परीक्षण दिवस है"। आज सायंकाल प्रतिक्रमण के समय वह चाँस (अवसर) आने वाला है-जब कि हम भाव-विशुद्धि पूर्वक धर्म-ध्यान ध्याते हुए प्राणिमात्र से

८४ लाख जीव-योनि से "क्षमा-याचना कर अपने अंतःकरण को निर्मल और पवित्र बनादें।

शास्त्रकारों ने ध्यान के ४ भेद बताये, जिनमें से २ प्रशस्त और २ अप्रशस्त हैं। कल आपको ध्यान की प्रक्रिया में साधक की भूमिका-शुद्धि की कुछ बातें बतलाई थीं। आज ध्यान के सम्बन्ध में विशेष ज्ञातव्य बतलाया जा रहा है। ध्यान का अर्थ है— "स्वरूप–रमण" जो स्वरुप रमण नहीं कर सकता, वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

आप में जब तक कि कोई आपको पाता नहीं,
मोक्ष के मंदिर तलक हरगिज कदम जाता नहीं।"

"ध्यान का विवेचन"— आज हमें इस धर्म ध्यान की साधना करते हुए प्रतिक्रमण का ध्यान रखकर ठीक समय में अन्तःकरण की निर्मलता पूर्वक प्राणीमात्र से आत्मीयता कर लेनी है।

समय का भी बहुत महत्व है—Time is money जुवार के मोती बनाने का चांस है। यदि समय चूक गये तो फिर जुवार की घूगरी ही हाथ लग सकती है। "विद्वान पंडित एवं पड़ोसन" "सेठानी का दृष्टांत।"

उदायन राजा ने किस प्रकार से जुवार के मोती बनाये ? विशेष कुछ समझाने की आवश्यकता नहीं रहती। आप स्वयं बुद्धिमान है। बुद्धिमानों को तो इशारा ही काफी होता है। इस प्रकार अपनी विगत भूलों के लिये क्षमा मांगो।

मेरी भूल क्षमा कर देना "ओ विश्व के सभी जन" और हाँ—एक बात जो आपको इस पर्यू षण पर्व और विशेष कर

संवत्सरी पर्व के महान प्रसंग पर वतला देना आवश्यक समझता हूं। वह यह है कि " भूलना सीखो।"

हमेशा तो याद करना ही सिखाया जाता है, पर आज का यह विशेष पाठ—"भूलना सीखो"। यह आपके जीवन का परिमार्जन करने में अवश्य ही सहायक होगा। और आज से भविष्य के लिये प्रेम–पूर्ण जीवन विताने के लिये निम्न प्रतिज्ञा एवं नियम भी आवश्यक हैं।

युवकों की प्रतिज्ञा, ४५ नियम. ३२ प्रतिज्ञा। आवाल-वृद्ध, भाई एवं वहिनों को निम्न प्रतिज्ञाएं एवं नियम धारण करते हुए "भारत वर्ष की प्रगति किस प्रकार हो " होवे धर्म-प्रचार " और हम उस प्रगति में अपना कितना पार्ट, कैसे आचरण द्वारा अदा कर सकते हैं, इस विषयक अपने को निर्माण करने की आवश्यकता है। "नव-निर्माण एवं नव सर्जन" के माध्यम से नयी सर्जना एवं नया निर्माण ही हमारे भौतिक एवं आध्यात्मिक-जीवन-विकास के लिये सहायक होगा।

वन्धुओं !

पूज्य गुरुदेव के ये अनमोल मार्ग दर्शक वोल आपने जिस शांति और धैर्य के साथ सुना, उससे हमें वहुत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। अतः इस सम्वन्ध में अपन एक मार्ग दर्शक कविता का उच्चारण कर ले। " तुम पाये हो अनमोल "।

परिपूर्ण आनंद एवं उल्लास के वातावरण में हमारी यह साधना के दिवस की आज पूर्णता है। जिनेश्वरों की असीम अनुकम्पा से ही यह साधना सध सकी है अतः तत्सम्वन्धी विजयगान का वधावा और दयामाता की आराधना कर अपने को कृतार्थ करें।

सांभल भव प्राणी !

वेलारा वाया ओ मोती निपजे ।

स्वर्गीय आचार्य श्रीजी कभी कभी रूपक भी दिया करते थे । वह आप लोगों की स्मृति में होगा ।

जहां आकाश में नक्षत्र अमुक ग्रह के साथ संयुक्त होता है, तव एक समय ऐसा भी आता है कि "जुवार को उबलते हुए पानी में डालदी जाए तो मोती बन जाते हैं । एक ज्योतिषी ने विश्व के तत्त्वों का अवलोकन किया । अंतर विज्ञान का ज्योतिष में वड़ा आधार है। वह ज्योतिषी आज की तरह का नहीं था, उसका जीवन कष्ट-प्रद था । आजीविका का साधन नहीं था । कभी कभी आर्थिक-दृष्टि से विव्हल होकर उसकी धर्म पत्नी उसे कह दिया करती थी कि "सारी जिंदगी तुमने इन पोथों को पढ़ने में लगाई और आज हम भूखों मर रहे हैं । ऐसी पढ़ाई से क्या होने वाला है ?" छोड़ो पढ़ाई को और आजीविका की साधना में लगो" । परन्तु वह जानता था कि-"जिन खोजां तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ" कभी ऐसा भी समय आ सकता है कि "जुवार के वोए मोती वन सकते हैं" । उसने पत्नी से कहा । उसकी पत्नी ने पूछा कि "जिंदगी के इतने दिन तो गुजार दिये क्या वह समय अभी तक नहीं आया ? ऐसा मुहुर्त अव भी निकालिये, मैं भी तो आपकी पढ़ाई के रहस्य को देखूं" । उसने कहा कि—"इस विश्व में ऐसी प्रक्रिया भी चलती है कि उस प्रसंग पर उवलते हुए पानी में जुवार को डालदें तो मोती वन जाते हैं" । मैं उस मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रहा हूँ । मैं एकाग्रता के साथ उस अवसर की खोज में लगता हूँ और तुमको संकेत देता हूँ कि "तुम वीस

सेर जुवार कहीं से लेआओ, साफ करके तैयार रखो, इधर चूल्हे पर पानी खौलने रखदो मैं जिस समय गणित के आधार पर उस मुहुर्त पल की स्थिति देखूंगा—उस वक्त वोलने का ज्यादा समय नहीं रहेगा सिर्फ इशारा रहेगा। मैं जैसे ही "हूँ" का इशारा करूं तुम तत्क्षण वह जुवार उस खौलते हुए पानी में डाल देना ताकि वह पानी में गिरते ही मोती वन जाये। किन्तु उस विद्वान की धर्म पत्नी को विश्वास नहीं हुआ, फिर भी वह सोचने लगी कि "जब पति देव कह रहे हैं तो कुछ किया जाय। घर में जुवार नहीं थी तो वह पड़ोस में रहने वाली सेठानी के पास पहुँची और उससे २० सेर जुवार उधार मांगी। वह पड़ोसन चतुर थी, वह जानती थी कि मेरे पड़ोस में विद्वान पंडित रहते हैं। यद्यपि वे सीधे और सरल हैं फिर भी उनमें वड़ी सौम्यता है। और उनका जीवन न जाने किस अंदर की सृष्टि में लगा रहता है? संभव है आज उन्होंने कुछ वात वताई हो। उसने अपने चिंतन के साथ पूछा कि "वाईजी वीस सेर जुवार लेकर क्या करोगी? उसने कहा—"क्या करूंगी? मेरे पतिदेव किताबों के कीड़े बने हुए हैं और आज उन्होंने मुहुर्त निकाला है कि "बीस सेर जुवार साफ करके मैं जिस समय "हूँ" कहूँ तो खौलते हुए पानी में डाल देना। डालते ही वे सव मोती वन जाएंगे। इस वात को सुनकर उसने बीस सेर जुवार देदी। उसने सोचा यह जो समय आया करता है, किसी व्यक्ति विशेष के लिये नहीं आता। यह तो सृष्टि के तत्वों की प्रक्रिया वनती है और प्रकृति में वह शक्ति होती है। और जव वह समय आयेगा तो "पंडितजी के यहां वने और मेरे यहां न वने" ऐसा नहीं हो सकता। वह समय तो सवके लिये समान होगा, और सव इस विषय में सावधान रहें तो ऐसा हो सकता है। अतः मैं ऐसे समय में क्यों असावधान रहूँ? उसने भी २० सेर जुवार साफ करली।

पंडितजी के मकान की दीवाल के पास उसने उठाऊ सिगड़ी रखी और पानी चढ़ा दिया व सोचने लगी पंडितजी की "हूँ" की आवाज आएगी तो मैं भी ऐसा कर सकती हूँ। इधर वह विद्वान ज्योतिषी मुहुर्त देखने में तन्मय होगया। ध्यान लगाकर अन्तरात्मा के साथ गणित का सम्बन्ध जोड़ा। उसने ऐन समय पर अपनी पत्नी को संकेत दिया "हूं"। पड़ोसिन सेठानी ने तो उस शब्द को सुनते ही जुवार को खौलते हुए पानी में डाल दिया और उसकी पत्नी ने पूछा-क्या ओर दूं ? इतने में वह समय निकल गया। पंडितजी ने सोचा, मैंने इसको पहले ही सब समझा दिया था, फिर भी वह कितनी मूर्ख निकली ? समय निकल जाने के वाद उसने ओर दिया। कुछ समय वाद जब ढ़क्कन खोला गया तो देखा कि—"ज्वार की घूगरी वन गई। यह देखते ही तो उसकी पत्नी आग-वबूला हो गई, जवान पर संयम नहीं रहा। अंट-शंट वकते हुए उसने वह घड़ा अपने पति के सामने लाकर पटक दिया। पतिदेव माथे पर हाथ रख कर चिंतन करने लगे, मैंने मुहुर्त निकाला किन्तु इसने साधा नहीं और अव मुझे दोष देरही है।

इधर पड़ोसिन ने ढ़क्कन खोला तो वर्तन मोतियों से लवालव भरा हुआ था। उसने कमरे में उंडेल दिये तो कमरा प्रकाश से जगमगा उठा, उसने सोचा-"पंडितजी की पत्नी ने अज्ञानतावश समय नहीं साधा और अव उन्हें दोष देरही हैं। उनकी कृपा से मुझे यह लाभ मिला है। अतः अव मुझे इसमें से कुछ "मोती पंडितजी को भेंट करना चाहिये" तभी उस दोष की निवृत्ति होगी।

इधर पत्नी वड़वड़ा रही थी, पंडितजी चिंतन कर रहे थे, इतने में ही तो पड़ोसिन पंडितजी के घर आई और मुट्ठी भर मोती पंडितजी के सामने रख दिये। पंडितजी ने पूछा–"वाईजी, आप कौन हैं ? अन्दर की खोज करने वाले को यह भी पता नहीं है कि–"पड़ोस में कौन रहता है ? उसने कहा–विद्वद्वर्य ! मैं आपके पड़ोस में रहने वाली एक महिला हूँ और आपकी विद्या से प्रभावित हूँ। पंडितजी ने पूछा कि–'यह मोती कैसे लाये' उसने कहा कि—"यह सब आपकी अंतरदृष्टि का फल है। आपने मुहुर्त निकाला और आपकी धर्म पत्नी से मालूम हुआ और आपके इशारे पर मैंने जुवार डालदी। उसके ये मोती वन गये। उनमें से कुछ मोती भेंट स्वरूप लेकर आपके पास आई हूँ यह सुनते ही विद्वान को जोश आगया। उसने सोचा–"जो कुछ बना सो वना" मेरी पत्नी नहीं कर पाई तो कुछ नहीं–"मेरी विद्या गलत नहीं रही।" वह पंडितजी की स्त्री अपनी अज्ञानदशा पर पश्चाताप करती हुई पंडितजी के पैरों में गिरती है और कहने लगी–"पतिदेव ! मुझे क्षमा करें।" अब वैसा मुहुर्त और निकालिये। पंडितजी कहने लगे कि"वह समय बार बार आने वाला नहीं है।"

वन्धुओं ! यह तो रूपक है। इसको पहचानिये। "इस सम्वत्सरी का मुहुर्त किसने निकाला है" ? "सर्वज्ञ-सर्वदर्शी परमात्मा ने", जिन्होंने अपने–"अन्दर का कालुष्य धोडाला है"। आप इस सम्वत्सरी पर्व के मुहुर्त को कैसे साधेंगे ? इसकी आराधना कैसे करेंगे–इस समय को–'पर्व को मोती वनाने के रूप में कैसे सफल करेंगे ? "क्या उस पंडिताइन की तरह या पड़ोसिन की तरह हैं" ? कैसे क्या करेंगे ? यह तो आपके सोचने का विषय है।

माता-पिता, सास-ससुर का पुत्र-पुत्री एवं पुत्र वधू जमाता के प्रति पारस्परिक कर्तव्य

बालक के हृदय पर माता की शिक्षा का प्रभाव स्थायी होता है। जिन शिक्षाओं को शिक्षकगण एक विशेष समय में भी बालक के हृदयस्थ नहीं करा सकते उन्हीं को माता सहज में ही हृदयस्थ करा सकती है। माता की दी हुई शिक्षा का प्रभाव-स्थायी होता है। यदि माता चाहे तो अपने बालक को वीर बनाए या कायर, मूर्ख बनाए या विद्वान, सच्चरित्र बनाए या दुश्चरित्र। कहा है—

> लाडयेत् पंचवर्षाणि, दस वर्षाणि ताड़येत्।
> प्राप्तेतु षोडषे वर्षे, पुत्रमित्र मिवाचरेत्॥

लाड़ प्यार के समय ही नहीं बल्कि सती मदालसा की तरह माता के गर्भ में रहने के समय से बालक शिक्षा प्राप्त करने लगता है। मातृ शिक्षा का बालक के जीवन पर बड़ा ही सुन्दर प्रभाव पड़ता है।

> सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽपि।
> संसार स्वप्नं त्यज मोहनिद्रां, मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम्॥

सती मदालसा की इस शिक्षा के फलस्वरुप एक नहीं सात सात बालक १६ वर्ष की उम्र में योगी बन गए।

बालकों की शिक्षा विषयक सबसे अधिक जवाबदारी माता-पिताओं की है। उन्हें इस बात का ध्यान रखना बहुत ही जरुरी है कि शिक्षा के नाम पर कहीं कुशिक्षा न प्रवेश हो जाए अन्यथा लाभ के बदले हानि ही अधिक होगी। दूसरी बात शिक्षा

पाकर अपना या अपने कुटुम्ब का पालन पोषण कर लेना इतने मात्र से भी शिक्षा की सार्थकता नहीं है।

आत्मा का विकास ही शिक्षा का प्रधान उद्देश्य होना चाहिये। योग्य शिक्षा प्राप्त कर बालक विनयी होता है तभी वह पात्र बनता है। पात्र में अनेक गुण आश्रय लेते हैं। गुणवान को लक्ष्मी वरण करती है और वह धर्म की आराधना करता है।

मातृ शिक्षा कोई साधारण चीज नहीं है। वीरांगना साहसिनी और धर्म परायणा माता ही बालक को वीर साहसी और धर्म परायण बना सकती है। स्कूली शिक्षा के साथ-साथ अपने बालकों में खानदान के, जाति के, समाज के, देश के, धर्म के व आध्यात्मिकता के संस्कार डालते रहना चाहिए जिससे वे बड़े होने पर मर्यादा का पालन करते हुए आदर्श नागरिक बन समय पर धर्म की रक्षा कर सकें।

जहां धर्म नहीं, मर्यादा का पालन नहीं, बड़ों का विनय नहीं वहां वीरता नहीं बर्बरता का विकराल रूप है। अतः प्रत्येक बालक बालिकाओं को बचपन से ही साधारण धर्म का ज्ञान कराना अति आवश्यक है। नैतिक धर्म भी मानवता को कायम रखकर देवत्व के अभिमुख करता है।

अक्षरी ज्ञान के साथ-साथ बालक, बालिकाओं को कला कौशल में भी पारंगत करना आवश्यक है। जिसमें पढ़ना लिखना गणित वाद्य वादन, गायन, अन्न उपजाना, भोजन बनाना, शारीरिक स्वच्छता, वस्त्र निर्माण, परिधान, केश विन्यास वस्त्राभूषण अलंकार करना, वाद विवाद, भाषा विज्ञान, युद्ध कला विज्ञान आदि स्त्रियोचित ६४ कला तथा पुरुषोचित ७२ कलाओं का

यथा योग्य अभ्यास कराने के साथ-साथ प्राकृतिक ज्ञान भी उपयोगी है।

प्रकृति के फलफूल पशु पक्षी नदी पहाड़ आकाश आदि से प्राकृतिक गुणों का ज्ञान प्राप्त कराना आवश्यक है। कहा भी है—

फुलों से तुम हंसना सीखो। वह शक्ति हमें दो दयानिधे।
खड़ा हिमालय बता रहा है, डरो न आंधी पानी में।

आकाश की तरह व्यक्ति भी असीम और अनंत है। वन की प्राकृतिक शिक्षा छात्र में नूतन कुतूहल नवीन जिज्ञासा, नई उमंग, नया उत्साह, अदम्य रुचि और असीम प्रीति उत्पन्न करती है। अतः माता पिता का बालक-बालिकाओं के प्रति अनिवार्य कर्तव्य है कि वे उन्हें यथा योग्य शिक्षा दें। अन्यथा कहा है।....

माता शत्रुः पिता वैरी, याभ्यां बाला: न पाठिता
न शोभते सभा मध्ये, हंस मध्ये बको यथा

सन्तानों को जन्म देने के पश्चात् माताएं किस प्रकार के संस्कार देती है वह निम्न कविता से सीखें—

बालो पांखा बाहिर आयो माता वैन सुनावे यूं।
म्हारी कूंख सराइझे रे बाला, म्हेंथने सखरी घूंटी द्यूं।

बालक बालिकाओं को भी चाहिए कि वे माता पिता की तन, मन, धन से सेवा कर मधुर वचनों से उन्हें शांति प्रदाता बनें। कहा भी है—मां बाप ने भुलशो नहीं।

भूलो भले बीजूं बधूं, मां बाप ने भुलशो नहिं।
अगणित छे उपकार एना एह विसरशो नहिं।

शास्त्रकारों ने कहा है कि श्रवण की तरह सेवा करता हुवा बालक यदि अपनी चमड़ी के जूते भी बनाकर माता पिता

को पहना दे तो भी वह उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता इतना उपकार माता पिता का बालक पर होता है।

केवली प्ररुपित धर्म से डिगते हुए को पुनः धर्म में स्थिर करने वाला ही व्यक्ति १ माता पिता २ गुरुजन एवं ३ स्वामी के ऋण से मुक्त हो सकता है।

सच्चे पुत्र का कर्तव्य है कि कम से कम अपने और अपने परिवार के भरण पोषण के योग्य सामग्री उपार्जन कर माता पिता की सेवा करें और उनका अंतिम जीवन सुधारे।

माता पिता पुत्री को भी भली प्रकार से शिक्षित कर उसे धार्मिक संस्कारों से सुसज्जित करे। उसे यह भी शिक्षा दे कि पति ही परमेश्वर है और पति को जन्म देकर उनका पालन पोषण कर योग्य बनाने वाले उनके माता पिता है। जन्म देने वाले माता पिता और भाई वहिन सखी सहेलियों का साथ छोड़कर तुझे उनके बीच में रहना है। उनके माता पिता ही तेरे माता पिता है उनके भाई बहिन ही तेरे भाई बहिन है। जेठ जेठानी और वड़ी ननंद ननदोई को माता पिता मानना। देवर देवरानी और छोटी ननंद ननदोई को अपने छोटे भाई वहन और पुत्र पुत्रियों की तरह समझ कर पूर्ण प्रेम देना। वहाँ के नौकर और अड़ोसी पड़ोसियों के साथ भी आत्मीयता पूर्ण व्यवहार करना।

सास ससुर का भी कर्तव्य है कि वे पुत्र वधू एवं जमाता को पुत्री एवं पुत्र की तरह प्रेम दें। माना कि आपने पुत्र की तरह पुत्री को भी जन्म दिया पाला पोसा वड़ा किया उसके प्रति आपकी असीम ममता है और होनी भी चाहिए पर यह नियम

भी नहीं भुलाना चाहिए कि वह यौवन अवस्था में आपकी ममता को लेकर ससुराल जाने वाली है और उसके अभाव में आप सूना अनुभव करने लगेंगे पर यह भी तो याद रखें कि उसके रिक्त स्थान की पूर्ति आपकी पुत्र वधू करेगी जो अपने माता पिता भाई वहन सखी सहेलियों का लाड़ दुलार और प्यार लेकर आपके पास आई है। वह आपसे पूर्ण प्रेम, आत्मीयता पाकर आपके सूनेपन को दूर करने वाली है। पर किसी भी स्थिति में अनुशासन को न भूले।

२ स्वधर्मी भाई वहनों का पारस्परिक कर्तव्य—

सहोदर भाई वहनों की तरह गांव में जिनके साथ वचपन में खेला कूदा खाया पिया वे भी तो हमारे आत्मीय भाई वहन है। और प्रभु महावीर के शासन में जो चतुर्विध संघ है उसमें साधु साध्वी वड़े भाई वहन है और श्रावक श्राविका छोटे भाई वहन है। सहोदर भाई वहनों की तरह इन सभी भाई वहनों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

वहिनों के सुख दुःख में भाई को सहयोगी वनना ही चाहिए। मुख्य रूपसे वे उनके सतीत्व की रक्षाके लिए हर संभव प्रयत्न करें।

भाई वहन एक दूसरे को आध्यात्मिक विकास में भी मार्ग दर्शन दें। सामाजिक स्तर पर भी एक दूसरे का पूर्ण रूपेण सहयोग अपेक्षित है।

जैसे माता पिता का कर्तव्य है कि वे अपनी संतान को पाल-पोष, वड़ाकर यथा योग्य शिक्षा एवं संस्कार से सुशोभित करते है उसी प्रकार वड़े भाई वहिनों को भी अपने छोटे भाई वहिनों को संस्कारों से सुशोभित करने की जवाबदारी समझनी चाहिए।

३ पति पत्नी का पारस्परिक कर्तव्य "मन माने तो सुख और मन न माने तो दुख" व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितयों को भी अपने विचारों के अनुकुल समझ ले तो उस प्रतिकूल परिस्थिति में भी उसे आनंद ही मिलता है। वह जहर को भी अमृत कर लेता है। यही सुख का रहस्य है।

१ भक्त तुकाराम की कर्कशा पत्नी ने क्रुद्ध होकर कहाकि मैंने बचे हुए आटे की घी डालकर एक ही रोटी बनाई, उसे मैंने भी नहीं खाई, तुम्हारे लिए ही रखी थी, और तुमने उसे भिखारी को देदी। तब भक्त ने कहा कि तुमने तो त्याग का आदर्श उपस्थित किया मैंने भी उसे भिखारी को देकर तुम्हारी अर्थात् त्यागियों की श्रेणी में आगया। इससे तो तुम्हें प्रसन्नता होनी चाहिए।

२ भक्त ने एक गन्ना अपनी पत्नी को देते हुए कहा कि किसान तो गन्ने का गठ्ठा और घड़ा भर रस दे रहा था लेकिन मैंने उसका मन रखने के लिए एक ही गन्ना लिया। पत्नी ने कहा तुम भी कैसे मूर्ख हो, सब कुछ दे रहा था फिर भी लाए एक जब कि घर में खाने वाले तीन है। पत्नी की बात सुन भक्त मुस्कराने लगे, पत्नी का गुस्सा भड़क गया, उसी गन्ने से भक्त को दे मारा। तीन टुकड़े हो गए। भक्त कहने लगे तुम भी कितनी चतुर हो कि आवश्यक्तानुसार ही टुकड़े कर लिए। इतना कह वे हंसने लगे। यह थी भक्त की सहन शीलता और क्षमा की अनुपम शक्ति।

त्याग को अपना कर और विलासकारी कार्यों से विरक्त हो पति पत्नी एक दूसरे को मोह के दल दल से उबार सकते हैं। स्त्री के लिए परमात्मा और पति समान रूप से वंदनीय है।

अपने आराध्य पति देव को नम्रता त्याग एवं तपस्या से पत्नी द्वारा सन्मार्ग पर लाया जा सकता है।

छाया काया के, कुमुदिनी जलके, चंद्रिका चंद्र के और पत्नी पति के साथ ही रहेगी, विलग नहीं। सुख के समय स्त्री चाहे पति से दूर रहे परन्तु दुख के समय जो स्त्री पति का साथ छोड़ देती है वह स्त्री नहीं वरन स्त्री जाति का कलंक है। पति पत्नी का सम्वन्ध ही सहयोग के लिए होता है। स्त्री की परीक्षा कष्ट में ही होती है। कहा है—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परखिये चारी॥

इसके विपरीत पति को मोह में फंसाने, उन्हें अपने कर्तव्य से पतित करने, उनके शारीरिक सौंदर्य और नैसर्गिक गुणों का नाश करने का कारण अनपढ़ पत्नी होती है। उनका हंसी श्रृंगार रागरंग पति के लिए घातक होता है। इस मोह के नाश का उपाय है त्याग।

त्याग को अपना कर विलासपूर्ण कार्यों से विरक्त हो अपने पति को समझदार पत्नी उवार सकती है। जो अपने आपको पति की अर्द्धांगिनी मानती हैं वे तो पति के किसी उचित कार्य का किसी समय भी कदापि विरोध नहीं करती है। इसी तरह पति का भी कर्तव्य है कि वह पत्नी को यथा समय यथा योग्य आदर दें, मधुर वचनों का प्रयोग करे, किसी प्रकार का अपराध होने पर भी शाँति से उसे समझाने का प्रयास करे।

कहा है–घृणा पाप से हो, पापी से नहीं कभी लवलेश।
भूल सुझाकर प्रेम मार्ग से करो उसे पुण्येश।
यही है महावीर संदेश—

सद्गुण ही दुर्गुणों का नाश करने में समर्थ होते है।

४. स्वामी सेवक का पारस्परिक कर्तव्य–संसार में सेवा के बराबर कठिन कोई कार्य नहीं है। जो व्यक्ति अपनी आत्मा को अच्छी तरह से वश में कर सकता है, मालिक की इच्छानुसार अपने स्वभाव को बना सकता है, वही सेवा धर्म का पालन कर सकता है। सेवा धर्म इतना कठिन है कि यदि सेवक चुप रहता है तो मालिक उसे गूंगा कहता है, बोलता है तो वाचाल, पास रहता है तो ढीठ, दूर रहता है तो मूर्ख, सह लेता है तो डरपोक, नहीं सहता है तो नीच कहा जाता है। सेवा धर्म योगियों के लिए भी अगम्य है।

पूर्व के लोग अपने यहां कार्य करने वाले सेवक को अपने घर का एक सदस्य ही मानते थे। वे सेवक से प्रत्येक कार्य प्रेम से लेते थे जिससे उसको यह अनुभव न हो कि मैं इनका सेवक हूं। वे उसके खान पान आदि का एवं सुख-दुख का उसी प्रकार ध्यान रखते जिस प्रकार माता अपने पुत्र के प्रति इन बातों का ध्यान रखती है और व्यवस्था करती है।

सेवक भी अपने स्वामी को माता पिता ही समझते ओर उनके घर को अपना ही घर समझते। प्रत्येक कार्य को अपना ही कार्य समझकर पूर्ण करते। मालिक सेवक को धर्म आराधना में भी सहयोग देते, अपने साथ धर्म स्थानक ले जाते; गुरुजनों का परिचय कराते, वंदन एवं धर्म ध्यान की विधि भी बतलाते, परस्पर कुशल पूछते और कठिनाइयां दूर करते।

समय पर यथायोग्य सहयोग देकर अपने समान बनाने वाले मालिक के प्रति सेवक का कर्तव्य हो जाता है कि वह मालिक का पूर्ण ध्यान रखे। कभी कर्म योग से सेवक सम्पन्न हो जाय और मालिक विपन्न हो जाय तो सेवक अपनी सर्व संपत्ति उसे प्रदान कर भी उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता इतना मालिक का उपकार है।

हां प्रसंगवश कभी कर्मयोग से मालिक केवली प्ररुपित धर्म से चलायमान हो जाय तो उसे पुनः धर्म में स्थिर एवं दृढ़ कर सेवक मालिक के ऋण से मुक्त हो सकता है।

५. स्नेही स्वजन संबंधियों का पारस्परिक कर्तव्य-

शरीर और मस्तिष्क का जितना घना संबंध है उतना ही संबंध स्नेही स्वजन संबंधियों का आपस में है उनका कर्तव्य है कि वे एक दूसरे के हित का ध्यान रखें। आवश्यक्ता होने पर एक दूसरे के सहयोगी बनें।

सुदामा और श्री कृष्ण की मित्रता प्रसिद्ध ही है।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपत काल परखिये चारी॥

अर्थ संकट से अपनी सर्जन शक्ति का उपयोग करने में असमर्थ स्नेही स्वजन संबंधी की सर्जन योग्यता का समुचित विकास करने के लिए एक दूसरे की यथा योग्य सहायता करे। व्यापारादि में उत्पन्न दिक्कतें दूरकर उनकी समृद्धि बढ़ाने के लिए प्रयत्न करे।

बेहूदे रीति रिवाजों को त्याग कर समाज सुधार के पक्ष पर चलने के लिए प्रयत्नशील बने। एक दूसरे की धार्मिक एवं सामाजिक प्रगति में समभाव पूर्वक भाग लेते हुए सत्पथ पर चलने की प्रेरणा देवे। इस प्रकार के व्यवहार से वे आपस में एक दूसरे के हृदय को जीत सकते है। यह संबंध एक दो नहीं सात पीढ़ी का होता है। अतः सहृदयता पूर्वक व्यवहार अपेक्षित है।

६. नागरिक ग्रामीणों का पारस्परिक कर्तव्य-

स्वजन संबंधियों की तरह ग्रामीण एवं नागरिकों का भी शरीर और मस्तिष्क जितना घनिष्ट संवंध है । ग्राम्यजन यदि शरीर के स्थान पर है तो नागरिक मस्तिष्क की जगह । शरीर की स्वस्थता पर ही मस्तिष्क की स्वस्थता निर्भर है । इसी प्रकार मस्तिष्क की विक्षिप्तता से सारे शरीर को हानि पहुंचती है ।

नगर का प्रधान आधार ग्राम है । ग्राम के विना नगर का जीवन टिक नहीं सकता । साथ ही नगर के विना ग्राम की सुरक्षा नहीं हो सकती । दोनों अपने-अपने कर्तव्य का पालन न करे तो दानों ही का पतन निश्चित है । ग्राम स्थविर और नगर स्थविर राज्य और प्रजा के बीच स्नेह सम्बन्ध स्थापित करता है सच्चा ग्राम सेवक अन्याय से नहीं डरता । सत्य और न्याय पर उसकी अविचल श्रद्धा होती है । आने वाली परेशानियों पर विजय प्राप्त कर भूले भटके लोगों को सुमार्ग वतलाता है । सच्चे ग्राम सेवक के अभाव में गावों में दुर्व्यसनों का दौरा चलता है घोर अज्ञान फैलता है । जड़ता वास करती है, गंदगी का वास होता है । दीनता और वेवसी नाचती है । मुकदमे वाजी होती है । और सारा ग्राम्य जीवन अस्त व्यस्त होता है ।

जिस ग्राम का नायक बुद्धिमान होता है वहां के लोगों को दुष्काल के समय कठिनाई नहीं होती क्योंकि वह दीर्घ दृष्टि से भविष्य का विचार कर धान्य का संग्रह करा रखता है । वह गोवंश के के पालन पोषण एवं संरक्षण संवर्धन की उचित व्यवस्था वैज्ञानिक ढंग से करता है । प्रत्येक ग्राम अन्न और वस्त्र की पूर्ति स्वयं अपनी ही उपज और मेहनत से कर लेता है ।

ग्राम मूल है तो शहर फूल पत्ते। जब मूल में सड़ान होती है तो उसका प्रभाव फूल पत्तो पर पड़े बिना नहीं रहता।

नगर स्थविर राज्य और प्रजा के बीच का प्रधान पुरुष होता है। नागरिकों की शारीरिक मानसिक आर्थिक व्यापारिक और सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति सुधारने में जो भी बाधक कारण होते हैं उन्हें दूर कर विकास के साधन पूर्ण रुपेण प्रस्तुत करना उसका कर्तव्य है। इसके लिए जगह-२ व्यायामशाला स्थापित करना, स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए योग्य व्यवस्था करना, घर-२ पानी पहुँचाने की उचित व्यवस्था करना, उनकी वाचिक उन्नति के लिए सभागृह स्थापित कर उनमें विद्वान वक्ताओं के भाषणों की समारोह पूर्वक व्यवस्था करना बौद्धिक विकास के लिए बाल शाला, कुमार शाला, किशोर शाला, प्राथमिक माध्यमिक एवं महाविद्यालय, विश्व विद्यालय आदि आवश्यक शिक्षण संस्थाएं स्थापित करना आदि उसमें मुख्य कर्तव्य है।

प्राचीन राजा वन पर अपना अधिकार न रखकर प्रजा के बहुत से लोगों की आजीविका के लिए छोड़ देते थे। वे फल फूल खाकर अथवा बेचकर अपने दिन व्यतीत करते थे, पशु आदि चराकर अपनी आजीविका करते थे। उन पर किसी व्यक्ति विशेष का नियंत्रण नहीं होता था। इसके अतिरिक्त वन के होने से वर्षा भी अधिक होती थी परिणाम स्वरूप अन्नादि भी अधिक पैदा होता था। मनुष्य को शुद्ध वायु भी मिलती थी। कहा भी है कि प्रकृति संपूर्ण विश्व की माता है वह समग्र संसार को भोजन देती है।

ग्राम निवासी और नगर निवासी को एक दूसरे के हित को ध्यान में रखकर सहयोगी बनना अत्यंत आवश्यक है।

७. शासक शासित का पारस्परिक कर्तव्य-

जिस प्रजा के पीछे शासक शासन करता है उसके धन का उपयोग करता है उस प्रजा के दुःख दूर कर उसकी रक्षा करना शासक का प्रथम कर्तव्य है ।

शासक और शासितमें पिता पुत्र का सा सम्वन्ध होता है । पुत्र यदि अपने कर्तव्य से पतित होता है, तो पिता उसे शिक्षा द्वारा ऐसा करने से रोक कर संमार्ग पर लाता है । और पिता अपने दायित्व से विमुख और अनीति में प्रवृत्त होता हो तो पुत्र के लिए भी पिता के ऐसे कार्यों का विरोध करने की धर्माज्ञा है ।

शासक का समय राज्य का प्रवन्ध देखने, न्याय करने, प्रजा के दुखों और अभावों को दूर करने में ही व्यतीत होना चाहिए । प्रजा के सदाचार आदि नीति संवधी और कला कौशल आदि व्यवसाय संवंधी शिक्षा का सुन्दर प्रवन्ध होने से अपराधों का नाम शेष हो जाता है । कर्मचारियों द्वारा किसी पर अत्याचार न हो इसका ध्यान रखना चाहिए । न्याय भी इतनी उत्तमता से करना चाहिए कि किसी भी पक्ष को दुख न हो ।

नीतिज्ञ शासक अपने कार्यों से निवृत होकर इस अभिप्राय से नगर में घूमने निकले कि दुखी मनुष्य अपना दुख उसे सुना सके । प्रजा जो शासक को पितृवत् समझती है शासक के दर्शन कर प्रसन्न हो जाए और शासक भी प्रजा को पुत्र की तरह देख ले । साथ ही नगर देश फसल स्वच्छता आदि का भी निरीक्षण हो जाय और स्वयं का स्वास्थ्य भी अच्छा रहे । उन्हें धीमी सवारी से या पैदल इस प्रकार चलना चाहिए कि उनके आने की सब को सूचना हो जाए और जिसे जो प्रार्थना करनी हो कर

रुके और वे भी ध्यान पूर्वक उनकी प्रार्थना सुनकर दुःख मिटाने का प्रयत्न करे।

सच्चा शासक किसी धर्म का पक्षपाती नहीं होता वह सत्य से अनुप्राणित होता है। वह सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखता है। वह साधु सन्तों आदि का उचित सत्कार करता है। ऐसा शासक नीतिज्ञ माना जाता हैं। प्रजा पर अत्याचार करने वाला शासक एकक्षण भी नहीं ठहर सकता। यदि वह अत्याचार करता है तो प्रजा सत्याग्रह पूर्वक उसका प्रतीकार कर सकती है। अत्याचार के भय से भागना कायरों का काम है।

८. आत्मा और शरीर का पारस्परिक कर्तव्य

"धर्मो रक्षति रक्षित:" हृदय के शांत और मन के स्थिर रहने पर ही आत्मिक आनंद होता है। मन की स्थिरता के लिए चिंताओं का नाश होना अति आवश्यक है। चिंताओं के पूर्णतया नाश होने पर आत्मा सच्चिदानंद बन जाती है।

धर्मात्मा मनुष्य सूर्योदय से पहले ही उठकर परमात्मा के ध्यान में लग जाते हैं। आत्मा में सत्य, फूल में सुगंध, तिल में तेल और दूध में घी की तरह व्याप्त रहता है।

आत्मशक्ति-एक क्रोधी तपस्वी के तपबल की अपेक्षा एक सत्यवादी गृहस्थ का सत्यबल कहीं अधिक होता है।

संसार में जितने भी अच्छे, कार्य हैं चाहे वे कष्ट साध्य हों लेकिन उनका फल अच्छा ही होता है। शुभ कार्य के करने में होने वाले कष्ट, कष्ट नहीं वरन सफल होने की तपस्या है। परमात्म पद प्राप्त करने के लिए आत्मा को उपलब्ध शरीर साधन है। मन वचन काया की एकाग्रता पूर्वक ध्यान चिंतन मनन

७. शासक शासित का पारस्परिक कर्तव्य-

जिस प्रजा के पीछे शासक शासन करता है उसके धन का उपयोग करता है उस प्रजा के दुःख दूर कर उसकी रक्षा करना शासक का प्रथम कर्तव्य है ।

शासक और शासितमें पिता पुत्र का सा सम्वन्ध होता है। पुत्र यदि अपने कर्तव्य से पतित होता है, तो पिता उसे शिक्षा द्वारा ऐसा करने से रोक कर संमार्ग पर लाता है । और पिता अपने दायित्व से विमुख और अनीति में प्रवृत्त होता हो तो पुत्र के लिए भी पिता के ऐसे कार्यों का विरोध करने की धर्माज्ञा है ।

शासक का समय राज्य का प्रवन्ध देखने, न्याय करने, प्रजा के दुखों और अभावों को दूर करनें में ही व्यतीत होना चाहिए । प्रजा के सदाचार आदि नीति संवधी और कला कौशल आदि व्यवसाय संबंधी शिक्षा का सुन्दर प्रवन्ध होने से अपराधों का नाम शेष हो जाता है । कर्मचारियों द्वारा किसी पर अत्याचार न हो इसका ध्यान रखना चाहिए । न्याय भी इतनी उत्तमता से करना चाहिए कि किसी भी पक्ष को दुख न हो ।

नीतिज्ञ शासक अपने कार्यों से निवृत होकर इस अभिप्राय से नगर में घूमने निकले कि दुखी मनुष्य अपना दुख उसे सुना सके । प्रजा जो शासक को पितृवत् समझती है शासक के दर्शन कर प्रसन्न हो जाए और शासक भी प्रजा को पुत्र की तरह देख ले । साथ ही नगर देश फसल स्वच्छता आदि का भी निरीक्षण हो जाय और स्वयं का स्वास्थ्य भी अच्छा रहे । उन्हें धीमी सवारी से या पैदल इस प्रकार चलना चाहिए कि उनके आने की सब को सूचना हो जाए और जिसे जो प्रार्थना करनी हो कर

सके और वे भी ध्यान पूर्वक उनकी प्रार्थना सुनकर दुःख मिटाने का प्रयत्न करे।

सच्चा शासक किसी धर्म का पक्षपाती नहीं होता वह सत्य से अनुप्राणित होता है। वह सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखता है। वह साधु सन्तों आदि का उचित सत्कार करता है। ऐसा शासक नीतिज्ञ माना जाता हैं। प्रजा पर अत्याचार करने वाला शासक एकक्षण भी नहीं ठहर सकता। यदि वह अत्याचार करता है तो प्रजा सत्याग्रह पूर्वक उसका प्रतीकार कर सकती है। अत्याचार के भय से भागना कायरों का काम है।

८. आत्मा और शरीर का पारस्परिक कर्तव्य

"धर्मों रक्षति रक्षित:" हृदय के शांत और मन के स्थिर रहने पर ही आत्मिक आनंद होता है। मन की स्थिरता के लिए चिंताओं का नाश होना अति आवश्यक है। चिंताओं के पूर्णतया नाश होने पर आत्मा सच्चिदानंद बन जाती है।

धर्मात्मा मनुष्य सूर्योदय से पहले ही उठकर परमात्मा के ध्यान में लग जाते हैं। आत्मा में सत्य, फूल में सुगंध, तिल में तेल और दूध में घी की तरह व्याप्त रहता है।

आत्मशक्ति-एक क्रोधी तपस्वी के तपबल की अपेक्षा एक सत्यवादी गृहस्थ का सत्यबल कहीं अधिक होता है।

संसार में जितने भी अच्छे कार्य हैं चाहे वे कष्ट साध्य हों लेकिन उनका फल अच्छा ही होता है। शुभ कार्य के करने में होने वाले कष्ट, कष्ट नहीं वरन सफल होने की तपस्या है। परमात्म पद प्राप्त करने के लिए आत्मा को उपलब्ध शरीर साधन है। मन वचन काया की एकाग्रता पूर्वक ध्यान चिंतन मनन

निदिध्यासन ही परमात्म स्वरुप की उपलब्धि कराते हैं। जो शरीर को सब कुछ समझता है वह आत्मा अपने परमात्म स्वरुप को प्राप्त नहीं कर सकता। संसार में जो आत्माएं निर्लोभी निष्काम हैं उनको कोई अपने धर्म और कर्तव्य से विमुख नहीं कर सकता। धर्म पालन में जो मनुष्य क्रोध मान माया लोभ से दूर रहता है वही धर्म का सफल आराधक होता है।

प्रत्याख्यान का महत्व

(१) पाठ—पच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ? पच्चक्खाणेणं आसव-दाराइं, निरूम्भई, पच्चक्खाणेणं इच्छा-निरोहं जणयइ, इच्छा-निरोहगएणं जीवे-सव्व-दव्वेसु, विणीय-तण्हे सीईए विहरई।

अर्थ—भगवन् ! प्रत्याख्यान करने से आत्मा को किस फल की प्राप्ति होती है ?

उत्तर—प्रत्याख्यान करने से हिंसा आदि आस्रव द्वार बंद हो जाते हैं और इच्छा का निरोध हो जाता है, इच्छा का निरोध होने से समस्त विषयों के प्रति वितृष्ण होकर साधक शान्त चित्त रहकर विचरण करता है।

(२) प्रत्याख्यान का अर्थ होता है—त्याग करना। त्यागने योग्य वस्तुएं द्रव्य और भावरूप से दो प्रकार की होती हैं। अन्न, वस्त्र आदि वस्तुएं द्रव्यरूप हैं, अतः इनका त्याग द्रव्य त्याग कहलाता है और अज्ञान, मिथ्यात्व, हिंसा, असंयम तथा क्रोध आदि विकार भावरूप हैं, अतः इनका त्याग भावत्याग माना जाता है। द्रव्य त्याग की सफलता भाव त्याग के साथ

होती है। जो द्रव्य त्याग भाव त्याग पूर्वक नहीं होता वह जीवन के विकास का कारण नहीं वन पाता। आत्म गुणों का विकास भाव त्याग पूर्वक द्रव्य त्याग के साथ ही सम्भव है। अतः भाव त्याग पूर्वक ही द्रव्य त्याग करना चाहिये, तभी वह प्रत्याख्यान कोटि में आ सकता है।

नोट—पूर्व के श्रावकों (व्रत साधकों) के रात्रि में चारों आहारों का त्याग व्रत नियम रहता था उसी के अनुसार सूर्य उदय से पच्चक्खान माना जाता था किन्तु वर्तमान के साधकों में रात्रि का पच्चक्खान कम पाया जाता है और सूर्य उदय के पूर्व खाने-पीने की धारणा वनी रहती है अतः ध्यान में रखना अनिवार्य है कि प्रत्याख्यान के पूर्व की रात्रि के १० वजे वाद कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहिये।

प्रत्याख्यान सूत्र

नवकारसी का प्रत्याख्यान

उग्गएसूरे, नमुक्कारसहियं, पच्चक्खामि। चउविहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थ-अणाभोगेणं, सहसागारेणं, वोसिरामि॥

अर्थ—सूर्य उदय होने पर दो घड़ी दिन चढ़े तक नमस्कार सहित प्रत्याख्यान ग्रहण करता हूँ और अशन (रोटी, चांवल, दूध आदि खाने पीने योग्य पदार्थ) पान (पानी) खादिम (वादाम इलायची आदि पदार्थ) स्वादिम (ऐसे पदार्थ जिनका मुख के स्वाद के लिए प्रयोग किया जाता है) चारों ही प्रकार के आहारों का त्याग करता हूँ।

इस प्रत्याख्यान में दो आगार अर्थात् अपवाद होते हैं (१) अनाभोग-अत्यंत विस्मृति (२) सहसाकार-अचानक भोजन पानी लेने में आ जावे।

पौरुषी-(एक पहर) का प्रत्याख्यान

उग्गएसूरे, पोरिसिंपच्चक्खामि, चउविहंपि, आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थ-अणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्न-कालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि।

पूर्वार्ध--(दो पहर) का प्रत्याख्यान

उग्गएसूरे, पुरिमड्ढं, पच्चक्खामि, चउविहंपि, आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थ अणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिया-गारेणं, वोसिरामि।

एकासन (एकासना) प्रत्याख्यान

उग्गएसूरे, एगासणं, पच्चक्खामि तिविहंपि चउविहंपि, आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थ अणाभोगेणं, सहसा-गारेणं, सागारियागारेण, आउट्टणपसारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, परिट्ठावणियागारेणं, महत्तारागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि॥

एकलठान (एकस्थान) प्रत्याख्यान

उग्गएसूरे, एगासणं-एगलठाणं, पच्चक्खामि, तिविहंपि चउविहंपि, आहारं-असणं पाणं, खाइमं साइमं। अन्नत्थ अणा-भोगेणं, सहसागारेणं, सागारियागारेणं, गुरु-अब्भुट्ठाणेणं, परिट्ठा-वणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि॥

आयंबिल (आचाम्ल) प्रत्याख्यान का पाठ

उग्गएसूरे, आयंबिलं, पच्चक्खामि, तिविहंपि आहारं असणं खाइमं, साइमं, अन्नत्थ अणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसिट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, परिट्ठावणियागारेणं, महत्तागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागरेणं वोसिरामि।

उपवास व्रतों के प्रत्याख्यान

—: चउविहार उपवास :—

उग्गएसूरे, चउत्थभत्तंअभत्तट्ठं, पच्चक्खामि चउविहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं साइमं। अन्नत्थ-अनाभोगेणं, सहसागारेणं, परिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

—: तिविहार उपवास का प्रत्याख्यान :—

उग्गएसूरे, अभत्तट्ठं पच्चक्खामि, तिविहंपि आहारं-असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थ अनाभोगेणं, सहसागारेणं, परिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, पाणस्स लेवेणवा अलेवेणवा, अच्छेलवा, वहुलेसेणवा, ससित्थेणवा, असित्थेणवा, वोसिरामि॥

दिवसचरम का प्रत्याख्यान का पाठ

(दो घड़ी सूर्य रहते आहार त्याग)

दिवस चरिमं पच्चक्खामि, चउविहंपि, आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थ अणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि॥

विगय (विकृतिजनक पदार्थों का) प्रत्याख्यान

विगइओ पच्चक्खामि, अन्नत्थ अणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसिट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, परिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

संवर करने का प्रत्याख्यान

णमोकारेणं, न पारेमि तावकायं, द्रव्य से पांच आश्रवद्वार, क्षेत्र से लोक प्रमाणे, काल से स्थिरता प्रमाणे, भाव से उपयोग सहित सावज्जंजोगं पच्चक्खामि, दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वायसा, कायसा, तस्सभंतेपडिक्कमामि निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ॥

दया (छः काया) व्रत का प्रत्याख्यान

उग्गएसूरे, छज्जीवणिकाय, विराहणाणं, पंचासव, दाराणंवा, पच्चक्खामि, दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वायसा, कायसा, तस्सभंते, पडिक्कमामि, निंदामि गरिहामि, अप्पाणं, वोसिरामि ॥

अभिग्रह-प्रत्याख्यान का पाठ

अभिग्गहं पच्चक्खामि। चउव्विहंपि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थ अणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि ॥

सामायिक (नववां) व्रत लेने का पाठ

करेमि भंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावनियमं (जितनी सामायिक लेनी हो उतने मुहूर्त उपरांत कहना) दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

सागारी संथारा करने का पाठ

दोहा

आहार शरीर उपधि पच्चक्खूं पाप अठार।
मरण पाऊं तो वोसिरे जीऊं तो आगार॥

जाव जीव संथारा का पाठ

अपच्छिममरणान्तियसलेहणा, झूसणा सहित चरम पच्चक्खामि, तिविहंपि, चउविहंपि, आहारं–असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, का पच्चक्खाण जावजीवाए तस्सभन्ते पडिक्कमामि निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वे सिरामि, गुरु या संघपति का आगार

प्रत्याख्यान-पारणा का पाठ

उग्गएसूरे, नमुक्कार सहियं...........पच्चक्खाणं कयं। तं पच्चक्खाणं सम्मं मणसा, वयसा काएणं, न फासियं, न पालियं, न तिरियं, न किट्टियं न सोहियं, न आराहियं। जं च, न आणाए अणुपालियं, न भवइ, तस्सिमिच्छामिदुक्कडं।

(दशवां) पौषध व्रत का पाठ

दसवां पौषध व्रत विषय पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोऊं आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, वहियापुग्गलपक्खेवे जो मे देवसिओ, अइयारो, कओ, तस्समिच्छामि दुक्कडं।

(ग्यारहवां) पौषधव्रत पारने का पाठ

ग्यारहवां पौषध व्रत—विषय पंच अइयारा, जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोऊं–अप्पडिलेहिय, दुप्पडिलेहिय,

श्रावक के चौदह नियम

जो श्रावक इन चौदह नियमों का प्रतिदिन विवेकपूर्वक वर्तन करता है तथा मर्यादा का पालन करता है वह सहज ही हालाभ प्राप्त कर लेता है—

१. सचित्त=नमक, पानी, वनस्पति, फल-फूल, धान्य बीज आदि की गिनती एवं वजन की मर्यादा अपनी इच्छानुसार करके बाकी का त्याग करना चाहिये।

२. द्रव्य=खान पान सम्बन्धी द्रव्यों की गिनती करके उपरान्त का त्याग करना चाहिये।

३. विगय=घी, तेल, दूध, दही, गुड़ (मीठा) और पकवान की गिनती तथा वजन की मर्यादा करके बाकी का त्याग करे, मधु और मक्खन का भी त्याग करना चाहिये।

४. पण्णी=जूते, मोजे, खड़ाऊ, बूट, चप्पलें आदि की मर्यादा करके बाकी का त्याग करना चाहिये।

५. ताम्बुल=पान, सुपारी, इलायची, चूर्ण खटाई, चटनी, पापड़ आदि के वजन की मर्यादा करके बाकी का त्याग करना चाहिये।

६. वस्त्र=सब जाति के वस्त्रों की गिनती की मर्यादा करके बाकी का त्याग करना चाहिये।

७. कुसुम=फूल, इत्र आदि सुगन्धित पदार्थों की मर्यादा करना शेष का त्याग करना चाहिये।

८. वाहन=गाड़ी, मोटर, तांगा, हवाई जहाज, नाव (किश्ती) आदि सवारी की मर्यादा करके वाकी का त्याग करना चाहिये।

९. शयन=शय्या, पाट, पाटला, पलंग, मकान आदि के विषय में मर्यादा करनी चाहिये।

१०. विलेपन=लेप और मालिश किये जाने वाले द्रव्य जैसे केसर, चन्दन, तेल आदि की मर्यादा करनी चाहिये।

११. अबंभ (अब्रह्मचर्य)=स्वदारा संतोष व्रत में जो मर्यादा करली है उसमें संकोच करना चाहिये।

१२. दिशि=दिशा परिमाण व्रत में जीवन भर के लिए जितना क्षेत्र रखा है उस क्षेत्र का संकोच करना चाहिवे।

१३. स्नान=स्नान की गिनती तथा स्नान के लिये जल के वजन की मर्यादा करनी चाहिये।

१४. भत्त=अशनादि चार आहार का परिमाण करके वाकी का त्याग करना चाहिये।

श्रावक के मनोरथ

जैन धर्म से वंचित होकर मैं चक्रवर्ती भी न होऊं, किन्तु जैन धर्म को प्राप्त करके मुझे दास होना और दरिद्र होना भी स्वीकार है।

श्रावक को प्रतिदिन यह मनोरथ करना चाहिए कि "मेरे जीवन में वह मंगलमय दिन कब आयेगा, जब मैं समस्त पर-

पदार्थों के संयोगों का त्यागी, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र का धारक, शरीर के स्नान आदि संस्कार से निरपेक्ष होकर मधुकरी वृत्ति युक्त मुनिचर्या का अवलम्बन लूँगा।"

"अनाचारियों की संगति का त्याग करके गुरुदेव की चरणरज का स्पर्श करता हुआ, योग का अभ्यास करके जन्म-मरण के चक्र को समाप्त करने में मैं कब समर्थ होऊँगा ?"

ऐसा अवसर कब आएगा कि मैं घोर रात्रि के समय, नगर के बाहर निश्चल भाव से कायोत्सर्ग में लीन रहूँ और मुझे स्तंभ-खंभा समझकर बैल मेरे शरीर से अपना कंधा घिसें ? मुझे ध्यान की ऐसी तल्लीनता और निश्चलता कब प्राप्त होगी ?

अहा, कब वह अवसर प्राप्त होगा कि "मैं वन में पद्मासन जमाकर स्थित होऊं, हिरन के बच्चे मेरी गोद में आकर बैठ जाएँ और मृगों की टोली का मुखिया वृद्ध मृग मुझे जड़ समझ कर मेरे मुख को सूंघे ?"

ऐसा शुभ अवसर कब आएगा कि "मैं शत्रु और मित्र पर तृण और स्त्रियों के समूह पर, स्वर्ण और पाषाण पर, मणि और मिट्टी पर, तथा मोक्ष और संसार पर समबुद्धि रख सकूं ? अर्थात समस्त दुःखों का निवारक और समस्त सुख का कारण समभाव मुझे कब प्राप्त होगा ?"

जब मैं संयम-व्यापारों का सेवन करने में असमर्थ होने लगूं अथवा मृत्यु का समय सन्निकट समझने लगूं तो ऐसे अवसरों पर चारों आहारों का और चारों कषायों का त्याग करूंगा, लौकिक फल की लिप्सा न रखूंगा, सभी परिषहों—उपसर्गों से भयभीत न होऊंगा, जीवित रहने और मरने की

इच्छा न रखता हुआ निष्काम भाव होकर समाधिरूपी सुधा से सिंचित करता हुआ ज्ञानादि की निरतिचार आराधना करता हुआ नमस्कार मन्त्र का जाप एवं अरिहंत आदि चार शरणों का अवलम्बन करता हुआ संलेखना आलोयणा निंदा करता हुआ मृत्यु प्राप्त करूंगा वह दिन धन्य होगा।

यह मनोरथ मोक्ष रूपी महल में प्रविष्ट होने के लिए निसरनी–नसैनी के समान गुण स्थानों की श्रेणी पर उत्तरोत्तर आरूढ होने के लिए आवश्यक हैं। परमानन्द रूपी लता के कंद है। श्रावक को इन मनोरथों का सदा चिन्तन करना चाहिये।

इस प्रकार दिन-रात सम्बन्धी चर्या का अप्रमत रूप से सेवन करने वाला और पूर्वोक्त व्रतों में स्थिर रहने वाला गृहस्थ, साधु न होने पर भी पापों का क्षय करने में समर्थ होता है।

अनुक्रमणिका		पृष्ठ
४	रूक्मणी का वैराग्य	१३६
५	मन हर्षे मेरा तन हर्षे	१३७
६	मां बाप ने भुलशो नहिं	१३८
७	आतमबल ही है	१३९
८	धन्य अर्जुनमाली	१३९
९	एवंता मुनिवर नाव	१४०
१०	काली ओ राणी	१४१
११	तप बड़ो रे संसार में	१४१
	नो इहलोगट्ठयाए	१४२
१२	बालो पांखा बाहिर	१४३
१३	जगत के तारने वाले	१४४
१४	मरणो जाणणो	१४४
१५	होवे धर्म प्रचार	१४५
१६	युवकों की प्रतिज्ञा	१४६
१७	तुम पाये हो अनमोल	१४७
१८	भूलना सीखो	१४८
१९	जिनराज बधावो	१४८
२०	म्हारी दया माता	१४९
२१	उठ भोर भई	१५०
२२	वह शक्ति हमें दो	१५१
२३	खड़ा हिमालय	१५१
२४	सीखो	१५२
२५	जिनदेव तेरे चरण में	१५२
२६	जय जय जय भगवान	१५३
२७	जीवन सफल बनाना	१५४

अनुक्रमणिका		पृष्ठ
२८	मैं हूं कैसा प्राणी रे	१५४
२९	तारो तारो जिनवर	१५५
३०	रे चेतन पोते तू पापी	१५६
३१	चेतन रे तू ध्यान	१५७
३२	जय बोलो महावीर की	१५७
३३	स्वागत गुरुदेव का	१५९
३४	शिविर विदा	१५९
३५	शाश्वत सुखदातार (संवाद)	१६०
३६	कदम कदम पर ठोकर	१६३
३७	प्रभु भक्त तेरा	१६४
३८	सदा याद अर्हं	१६४
३९	नमिराज इन्द्र (संवाद)	१६५
४०	अनाथी श्रेणिक (संवाद)	१६८
४१	सांभल भव प्राणी	१७०
४२	प्यारे साधु पना निभाना	१७०
४३	अरे मुसाफिर जग में	१७१
४४	तेने शोभे नहिं ते काम	१७२
	बतीस प्रतिज्ञाएँ	१७३
	पैतालीस नियम	१७५
	आदर्श सभ्यता	१७९
	विनय (लेख)	१८२
	विवेक (लेख)	१८४

प्रवचन समाप्ति के पश्चात् सुनाया जाने वाला

मंगलपाठ

नमस्कार मंत्र कहकर गुरुदेव की आज्ञा से—

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणं पवज्जामि,
सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि,
केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।
अरिहंत भगवंत का शरणा, सिद्ध भगवंत का शरणा,
साधु उत्तम पुरुषों का शरणा, केवली प्ररुपित दया धर्मका शरणा
चार शरणा, दुःख हरणा, और शरणा नहिं कोय।
जो भवि प्राणी आदरे, तो अक्षय अमर पद होय॥

पर्युषण समता संगीत

जगाने वाले आगए

ओ सोने वाले जागो, जगाने वाले आगए।
प्रेम की खुमारी, चढ़ाने वाले आगए।
भूले हुवे भगवन् से, मिलाने वाले आगए।
भगवन् का रंग, लगाने वाले आगए।
प्रेम की प्याली, पिलाने वाले आगए।
प्रभु की भक्ति में, भूलाने वाले आगए।
सोए हुवे पौरुष को, जगाने वाले आगए।
नर से नारायन, बनाने वाले आगए।
ओ सोने वाले जागो, जगाने वाले आगए।

स्वागत स्वागत पर्व तुम्हारा

❊ जय जय जय जयकार पर्यूषण ❊

स्वागत, स्वागत, पर्व ! तुम्हारा ! लो अभिनन्दन आज हमारा
वंदन सौ-सौ बार ॥ १ ॥
सब पर्वों का तू है राजा, तुम से उन्नत जैन समाजा।
हम तुझ पर बलिहार पर्यूषण ॥ २ ॥
तीर्थंकर भी तुझे मनाते, सुर-नर किन्नर सब गुण गाते।
महिमा अपरंपार पर्यूषण ॥ ३ ॥
सकल संघ की सेवा पल-पल, बहे शान्ति का झरना निर्मल।
पालें शुद्धाचार पर्युषण ॥ ४ ॥
चाहै त्रस हो, स्थावर प्राणी, चाहै मित्र हो, दुश्मन जानी।
आतम मय व्यवहार पर्यूषण ॥ ५ ॥

मैत्री का संदेश सुहाना, भूलो अपना और बैगाना।
सबसे प्रीति अपार पर्यू षण ॥ ६ ॥
आओ हम सब मिल आराधें, मैत्री-भावना दृढ़कर साधे।
सफल करें त्यौहार पर्यू षण ॥ ७ ॥

हित शिक्षा

घणो पछतावेला घणो पछतावेला।
जो धर्म-ध्यान में मन न लगावेला ॥ टेर ॥

रम्मत-गम्मत, काम कुतुहल में जो चित लुभावेला।
सत्संग बिन मूरख निष्फल, जनम गमावेला ॥ घणो. १ ॥
वीतराग की हितमय वाणी सुनता नींद घुलावेला।
रंग-राग-नाटक में सारी रात बितावेला ॥ घणो. २ ॥
मात-पिता-गुरुजन की आज्ञा हिय में नहीं जमावेला।
स्वेच्छाचारी बनकर हित की सीख भुलावेला ॥ घणो. ३ ॥
यो तन पायो चिंतामणी सम गया हाथ नहीं आवेला।
दान-दया सद्गुण संचय कर-सद्गति पावेला ॥ घणो. ४ ॥
निज आतम ने वश कर, पर की आतम ने पहुँचावेला।
परमातम भजने से चेतन शिवपुर जावेला ॥ घणो. ५ ॥
महापुरुषों की सीख यही है-गजमुनि आज सुनावेला।
गोगोलाव में माघवदी को जोड़ बनावेला ॥ घणो. ६ ॥

पर्वराज ही है-

पर्वराज ही है, सब पर्वों में श्रेयकार ॥ पर्वराज ही. ॥
पर्वराज जब यह आता है, दुनियां में आनंद छाता है।
शत्रु मित्र भी बन जाता है, करता जय-जय कार ॥ १ ॥

पर्वराज को जो अपनाता, आनंद मंगल वह सब पाता ।
प्रेम पाठ सब ही को पढ़ाता, करता शांति प्रसार ॥ २ ॥
आत्म शुद्धि पर दिल को जमाकर, क्रोध मान को दूर हटाकर ।
छल तृष्णा का भरम उड़ाकर, करता ज्ञान संचार ॥ ३ ॥
पूर्व काल का अवलोकन कर, हानिलाभ का ध्यान लगाकर ।
इस मुहूर्त को सफल बनाकर, करता आत्म सुधार ॥ ४ ॥
कायरता को दूर हटाकर, क्षमा वीर का भूषण बनकर ।
शुद्ध क्षमा का पाठ पढ़ाकर, पाता पद श्रेयकार ॥ ५ ॥

जो आनंद मंगल चहावे–

जो आनंद मंगल चहावे, वह पर्व पर्यूषण ध्यावे ॥ टेर ॥
जीवन–शुद्धि मन से करके प्रेम मगन हो जावे ॥ वह. ॥
दिल–कुंड को ज्ञान–सलिल से, भरके कदम उठावे ॥ वह. ॥
विवेक–घर में श्रद्धा–साबुन, लेकर कर्म धुलावे ॥ वह. ॥
मिथ्यात्व वसन को दूर फेंककर, सत्य वसन को धारे ॥ वह. ॥
आश्रव-द्वार संवर से बंद कर, ज्ञान-कुंड कुद जावे ॥ वह. ॥
परिग्रह-नाक-श्लेष्म समझकर त्याग फटकार लगावे ॥ वह. ॥
आसन बिछावे विश्व-मैत्री का, धर्य-पात्र बनावे ॥ वह. ॥
तप-अग्नि को प्रज्वलित करके, इंधन-कर्म बनावे ॥ वह. ॥
काम-क्रोध-मद मत्सर लोभ-इन सबकी आहुति दिरावे ॥ वह. ॥
अप्रशस्त राग को धूम्र-रुपकर व्योम-मांहि मिल जावे ॥ वह. ॥
मूल सहित उस दुष्ट द्वेष को, शान्ति–शस्त्र नसावे ॥ वह. ॥
शुद्ध स्वरुप का लक्ष्य बनाकर, ध्यान की ज्योति जगावे ॥ वह. ॥

तुम खूब करो धर्म ध्यान-

(पर्यूषण को शिक्षा)

(तर्ज—मैं जाती हूँ गिरनार)

तुम खूब करो धर्म-ध्यान-पर्यूपण आए।
धरोमती परमाद प्रभु फरमाए ॥ टेर ॥
दान-शील-तप-भाव-क्षमा तुम धरियो।
कठिन-वचन मुख बोल काहु मत लड़ियो ॥
हुवो किसी से वैर, देर विन खमिये।
रखो न दुश्मन-भाव, गुणी-सिर नमिये ॥
रखो न मन-अहंकार धर्म जो पाए।
जो रखो मन-अहंकार तो धर्म गमाए ॥
संत-सती की सेवा करो मन भाए ॥ तुम. १ ॥
कई अंत समय कहे तात-वात पुत्रों ने।
अमुक से जाव-जीव न बोलो कोई टाने ॥
रखजो गाढ़ा वैर कहूँ मैं तुमाने।
मरने परने न रखी रीत-सपूत गिणूं थाने ॥
जो रक्खोला व्यवहार तो हूं ला दानगिरी थांरो।
लीजो इनमे बैर वचन सुनो म्हांरो ॥
दीजो छोरां ने सीख लीक में रखे।
कोई उत्तम पुण्यवंत जीव धर्म को लक्खे ॥
करे त्याग पच्चक्खाण सारा ने खमाए ॥ तुम. २ ॥
करो कुशील का त्याग-रात्रि मत खावो।
रक्खो प्रभु का नेम, और मत न्हावो ॥
रात्रि-भोजन दोष ज्ञानी कह्यो मोटो।
द्रव्ये-भावे होय इसी में टोटो ॥

व्रत जो होय मलीन फेर उजवालो।
पग-पग रखो उपयोग हिंसा को टालो॥
एक देऊं तुमको सीख हिया में रक्खो।
कोई भूल-चूक पर-निंदकरी मत बक्को॥
ना देवो हुंकारो भूल न सुनियो काने।
यह दीनी तुमको सीख चौड़े नहीं छाने॥
तो होगा कारज सिद्ध, सदा मन चाहे॥ तुम ३॥
तुम करो सामायिक शुद्ध और प्रतिक्रमणो।
सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र में रमणो॥
जिन-धर्म को जानो सार, आतम को दमणो।
गुणनो श्रीनवकार, छुटे तेरो भमणो॥
सुनिये नित व्याख्यान अज्ञान को वमणो।
कठिन वचन सुनि कान शुद्ध दिल खमणो॥
मुनि राम कहे जिनराज, तणो लो शरणो।
सफल हुवे तेरा जन्म, मिटे भव-फिरणो॥
शिव-रमणी को वरो, मरण मिट जाए।
तुम खूब धर्म ध्यान, पर्यूषण — आए॥

धन्य-धन्य है दिवस आजका—

धन्य-धन्य है दिवस आजका, सुनो सभी इंसान—
संवत्सरी आया पर्व महान—
राग-द्वेष को त्याग के सारे, गावो प्रभु के गान॥ संवत्सरी.॥
गुरु-चरणों में सारे आके, विनय से अपना शीष झुकाके,
रगड़े-झगड़े सभी मिटाके, अपने दिल को साफ बनाके।
प्राणी-मात्र से मिलकर सारे, मांगो क्षमा का दान॥ १॥ संव-
यही पर्व उद्धार करेगा, नव जीवन संचार करेगा,

जो जन इसको प्यार करेगा, उसके सब संताप हरेगा।
इसी पर्व से मिलेगा तुमको, मुक्ति का वरदान ॥ २ ॥ संव-
भेद–भाव को दूर निवारो, जागो वीरो उठो विचारो,
जीती बाजी व्यर्थ न हारो, मिलकर आज प्रतिज्ञा धारो।
जैन–धर्म का तन–मन धन से, करना सब उत्थान ॥ ३ ॥ संव-

सब पर्वों का ताज–

सब पर्वों का ताज पुन्य दिन आज, संवत्सरी आई
सब लेवो सहर्ष मनाई ॥ टेर ॥
चौरासी लाख जीव-योनि से, जो वैर किया मन वच तन से,
भूलो वह और लेवो मैत्री बसाई ॥ हां. आज. १ ॥
जो जान बूझ कर पाप किया, या अनजाने अतिचार हुवा।
लो दण्ड और दो मिच्छामि दुक्कडं भाई ॥ २ ॥
अरिहंत-सिद्ध आचार्य श्री, पाठक मुनिवर–महासतियांजी।
श्रावक–श्राविका, सबसे लेवो खमाई ॥ ३ ॥
जो खमाता और शुद्धि करता, वह प्राणी आराधक बनता।
आराधक की होती गति सुखदाई ॥ ४ ॥
यह पर्व नित्य नहीं आता है, पाले वह मुक्ति पाता है।
केवल कहते पारस अपना नरमाई ॥ ५ ॥

यह वैर-विरोध विसार–(क्षमापना)

यह वैर विरोध विसार, अरे सबसे खमालेरे,
अरे दिलसे खमालेरे ॥ टेर ॥
है आज बड़ा त्यौहार, करलेरे भाई-भाई से प्यार, अरे सबसे....१
प्राणी मात्र है मेरे भाई, यह भाव न मन में लाया,

किन्तु सबसे नित्य झगड़ कर, उल्टा वैर जगाया रे, उल्टा वैर....
यों करते व्यवहार, थोड़ा भी मनमें किया न विचार
।।अरे सबसे. १।।
दीन दुखी इन छः कायों की पीड़ा नहीं मिटाई ।
किंतु उनकी हिंसा कर-कर पीड़ा अधिक बढ़ाई रे, पीड़ा अधिक....
रे समझ मूर्ख सरदार कि उसका फल है नरक-द्वार ।।अरे सबसे.२।।
मात पिता और संत-सती की सेवा नहीं बजाई ।
किन्तु उनका हृदय दुखाकर करली करम कमाईरे,करली करम....
अब एक यही आधार, विनय से करले क्षमा स्वीकार ।
।।अरे सबसे. ३।।
आज पुण्य से नगर — — में संवत्सरी आई ।
केवल कहते पारस सुनरे, जीवन में ला नरमाई रे,जीवन में ला....
रे सफल बना त्यौहार, करलेरे शत्रु मित्र से प्यार ।।अरे सबसे.४।।

ओ विश्व के सभी जन– (क्षमा-याचना)

[तर्ज—ओ दूर जाने वाले]

ओ विश्व के सभी जन, चौरासी लाख योनो ! चौरासी लाख....
है आज दिन क्षमा का, मुझको क्षमा करोनी....... मुझको........
भव-भव में संग भटके, नाते हुए अनंते........नाते........
सुत-तात-मात-भ्राता, नारी भी बन सलोनी....नारी. ।।१।।
फंस काम-क्रोध-मद में, बांधा जो वैर तुम से........बांधा........
छल-छिद्र कीने भारी–बोली कठोर वाणी... बोली.... ।।२।।
उन सारी ही त्रुटियों का, बदला चुकालो मुझसे....बदला....
भूलो पुरानी बातें, अब हो चुकी जो होनी....अब.... ।।३।।
कर जोड़ के क्षमा मैं चाहता हूं, शुद्ध मन से....चाहता....
कर दो क्षमा हृदय से, इतनी दया धरोनी....इतनी....।।४।।
मैंने स्वरूप जाना... गुरुदेव की कृपा से... गुरुदेव....
तुम भी तो जीत जागो, हिल-मिल गले मिलोनी....हिल....।।५।।

मेरी भूल क्षमा कर देना

काम-क्रोध के वश में होकर क्या-क्या अत्याचार किया है ?
धन-यौवन के झूठे मद में कितना दुर्व्यवहार किया है ?
कुल के मिथ्यागर्व ने मुझको, ऊँच-नीच का भेद बताया।
सत्य-प्रेम करुणा के पथ से, सत्ता के वल ने भटकाया॥
सदा स्वार्थ-हित जाने मैंने, किस-किस का अपकार किया है ॥१॥
आश भरे कितने दिल तोड़े, खून किया किन अरमानों का ?
पद की ठोकर से ठुकराया, मस्तक कितने इंसानों का ?
क्रूर वासनाओं ने मेरी, पावनता पर वार किया है ॥२॥ धन
बिना खिले मुरझाई होंगी, जाने कितनी कोमल कलियां।
मेरी बर्बरता ने करदी, सूनी कितनी प्यार की गलियां॥
मेरा सिर भी लाज से झुकता, मैंने जो व्यवहार किया है ॥३॥धन
क्षमा पर्व के शुभ अवसर पर, मैंने अन्तर में झांका है।
अपनी ही नजरों से अपने, सारे दोषों को आंका है॥
और खुले दिल से अपनी सब, भूलों को स्वीकार किया।
मानवता के पथ पर खुद को, चलने को तैयार किया है ॥४॥
मिटा अहं हो नम्र सभी के, चरणों में हूँ शीष झुकाता।
खुले ज्ञान चक्षु अव तो मैं, दुष्कर्मों पर हूँ पछताता॥
क्षमा-क्षमा, हे गुरुजन ! तुमने गिरतों का उद्धार किया ॥५॥ मान
वारवार कहता हूं सव से, मेरी भूल क्षमा कर देना।
शुभाशीष के वरदानों से, मेरी झोली को भर देना॥
क्षमा के चम्पू से जौहर, जीवन नैय्या पार किया है।
धन्य-धन्य वह जिसने अपनी भूलों को स्वीकार किया है ॥६॥

देवकी राणी का झूरणा

इम झूरे देवकी रानी यातो पुत्र बिना विलखाणी रे ।। टेर ।।
मैं तो सातों नंदन जाया, पिण एक न गोद खिलायारे ।।१।।
घरे पालणो नाही बंधायो, नहीं मधुर हालरियो गाया रे ।।२।।
घुंघर चुखणी नाही बसाया, झुमर पिण नाही बंधाया रे ।।३।।
नहीं गहना कपड़ा-पेराया, नहीं झगल्या टोपी सिवाया रे ।।४।।
नहीं काजल-आँख अंजाया, नहीं स्नान करीने जिमाया रे ।।५।।
नहीं गाल दामणां दीधा, वली चाँद सूरज नहीं कीधा रे ।।६।।
नहीं स्तन पान कराया, रूठा ने नाही मनाया रे ।।७।।
मैं तो पड़िया नाहीं उठाया, नहीं अंगुली पकड़ चलाया रे ।।८।।
छू-छू करी नहीं डराया, नहीं गुदिया पाड़ हंसाया रे ।।९।।
मुख पे चुम्बन नहीं दीधा, नहीं बधावणा लीधा रे ।।१०।।
नहीं चकरी-भँवरा रमाया, नहीं गुलीया-गेंद बसाया रे ।।११।।
मैं तो जनम जनम दुख देख्या, गया निष्फल जन्म अलेख्या रे ।।१२।।
अभागण पुण्य नहीं कीना, सातों पुत्र विछोवा लीना रे ।।१३।।
गल हाथ नजर दे धरती, आंखा आंसू भर झुरती रे ।।१४।।
'पग-वंदन' कृष्ण पधारे, माजी को उदास निहारे रे ।।१५।।
'अमिरिख' कहे किम दुख पावो, माताजी मुझे फुरमावो रे ।।१६।।

श्री गज सुकमाल कुमार

श्री गजसुकमाल कुमार धन्य अवतार ध्यान शुभ ध्याये
सब कर्म काट शिव पाये ।।टेर।।

ये कृष्णचन्द्र के लघु भ्राता, अरु सोमिल द्विज के जामाता।
कर गज-असवारी प्रभु-दर्शन को आये ।।१।।

सुन ज्ञान-दर्शन पा हर्षाए, संस्कार पूर्व के प्रकटाए।
यों कही प्रभु से दीक्षा लूं घर आए ॥२॥ सव०..........
इत हरि मातादिक समझाए, अभिषेक राज्य का करवाए
दिया त्याग राज्य तब दीक्षोत्सव मनवाए ॥३॥ सव०..........
ले दीक्षा प्रभु से अर्ज करी, तब आज्ञा दे प्रभु हर्ष धरी।
फिर महाकाल मरघट पे प्रतिमा ठाए ॥४॥ सव०..........
लख ध्यान अटल सोमिल आया, ये मम पुत्री को तज आया।
दी पाल बांध मिट्टी की आग रख जाये ॥५॥ सव०..........
जब हुई वेदना क्षमा वरी, अरु शुक्ल लेश्या ध्यान धरी।
लिया ज्ञान दर्श मिला मोक्ष प्रभु फरमाए ॥६॥ सव०..........

मेरे भैय्या की कहानी

(तर्ज—प्यारे प्रभु का ध्यान)

मेरे भैय्या की कहानी सुनादो मुझे।
कर जोड़ कहूं जिनराज तुम्हें ॥ टेर ॥
सुन्दर सुकोमल सुज्ञ मेरा प्राण–प्यारा था वही।
इस जीव के वह जीव था, इस प्राण के प्यारा वही ॥
प्रभु उसका तो जिक्र सुनादो मुझे ॥१॥
किस दुष्ट ने मुनिराज का कहो, खून प्रभुजी क्यों किया?
अपराध विन पापिष्ठ ने प्राण मुनिवर का लिया ॥
उनका कुछ तो इशारा वतादो मुझे ॥२॥
दिल हमारा ना लगे, प्रभु अर्ज यह सुन लीजिये।
कर कृपा उस दुष्ट का अब नाम जाहिर कीजिये ॥
स्वामिन् ! कुछ तो इशारा वता दो मुझे ॥३॥

प्रभु फरमावेरे—

(भगवान नेमिनाथ का उत्तर)

प्रभु फरमावेरे; श्री कृष्णचन्द्र का भरम मिटावेरे।
द्वारामती को वासी, राजा ! है अवगुण को दरियोरे।
नीच नीच से नहीं करे कृत, जैसो करियो रे ॥१॥
यहां से तू घर जासी केशव ! मारग में मिल जासी रे।
देख तुझे नीचे गिर जासी, वहीं मरजासी रे ॥२॥
इसे जानजे अरि तुम्हारा, प्रभु प्रकाशी रे।
गली—मार्ग से श्री कृष्णजी महलां जासी रे ॥३॥

अहो कृष्ण पियारा

अहो, कृष्ण पियारा, वचन हमारा, सुनले कान लगाय ॥टेर॥
सदा सरीखी ना रहीरे गेंद जो पलटा खाय।
इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र को भी, देवे कर्म रुलाय रे ॥१॥
मदिरा—योग से राज्य तुम्हारा पल में होसी ख्वार।
नगरी सगरी देखत क्षण में वल जल होसी छार रे ॥२॥
तेरे खांडे से तेरा मरना, जरा कुँवर के हाथ।
मरेगा जा कौशम्बी वनमें सुन गोपीयन का नाथ रे ॥३॥
हाथी घोड़ा सवही वलसी, जलसी भवन—भण्डार।
महल महलायत पुत्र मित्र गण एकन चलसी लार रे ॥४॥
सुन के कृष्णजी चिंतातुर हो पाया दुःख अपार।
नगर हमारा नहीं जले प्रभु ऐसा कहो उपचार रे ॥५॥
प्रभु फरमावे तप अखंड रहे, तब तक नहीं जलाय।
तपस्या—क्षति सुर देखसी तव नगर देसी जलाय रे ॥६॥
धर्म दलाली करले जिनसे, हो जासी कल्याण।
नर भव पाकर करणी करसी भाखी अभय भगवान रे ॥७॥

दुनियां दुखकारी

दुनियां दुखकारी, तू छोड़ सके तो छोड़ – दुनियां...........
पाप अठारह करना पड़ता, पाप करम भी वढ़ता जाता।
कर्म–वंध की ठोड़ – दुनियां...........
पेट पापियो खूब सतावे-देश-दिशावर में भटकावे।
करनी दौड़ा-दौड़ – दुनियां...........
कोइक घर में पुत्र कंस सा, कोइक घर में नार करकसा।
होती माथा-फोड़ – दुनियां...........
कोईक घर में सासू लड़ती, नणंद-भोजाई झगड़ा करती।
वोले कड़का मोड़ – दुनियां...........
घर में वेटा, पोता-पोती, दादी रसोई न्यारी करती।
दुख सूं कम्पे हाड़ – दुनियां...........
कोइक घर में ९-१० बेटा, परण्या न्यारा होगया मोटा।
वूढ़ो कमावे दौड़ – दुनियां...........
लड़की मोटी वर नहीं मिलियो, कोइक ने वर खोटो मिलियो।
गयो दिशावर छोड़ – दुनियां...........
घणी वेटियां दुखड़ो मोटो, इज्जत रखणी धनरो टोटो।
पुत्र मर्यो दिल तोड़ – दुनियां...........
मनरो चायो कुछ नहीं होवे, जो नहीं चावे वो झट होवे।
या जग में मोटी खोड़ – दुनियां...........
तन में मन में लगी विमारी, रोग-शोक में दुखियो भारी।
जीव भमे चहूँ ठोड़ – दुनियां...........
जो सुख चाहो दुनियां छोड़ों, संयम से तुम नाता जोड़ो।
पाप-करम सव तोड़ – दुनियां दुखकारी।

(१)

सुणजो भाई रे

सुणजो भाई रे संसारी ने सुख सुपने नाहीं रे ॥ सुणजो ॥

सबसे पहलो संसारी ने, दुःख रोट्यां रो लागो रे।

चिंतातुर हो रोट्यां खातिर इत–उत भागो रे ॥१॥ सुणजो

रोट्यां है तो दुख कपड़ारो, चहिये वढ़िया–वढ़िया रे।

कपड़ो है तो चहिये गहना, रतना जड़िया रे ॥२॥ सुणजो

गहना है तो दुख हवेली रो, चहिये रंग-रंगीली रे।

हवेली है तो चहिये रमणी, छैल–छबीली रे ॥३॥ सुणजो

परणे प्यारी निकले खोटी, जो नित छाती बाले रे।

तड़का–भटका करे न सुखसूं रोटियां घालेरे ॥४॥ सुणजो

कदी सुपातर मिले कामनी, तो तन-रोग दबावेरे।

नहीं संतान है लारे तब, इम जीव घबरावेरे ॥५॥ सुणजो

रोग मिटे कदा टाबर है तो पाल पोष परणानारे ।

सगा-सम्बन्धी करे रूसणा, पड़े मनावणा रे या मनाना रे ॥६॥ सु.

सगा कदाचित भला हुवे तो, निकले पूत कुपातर रे।

सीख देवता सिर में मारे, जूत फड़ाफड़रे ॥७॥

कदाचित बेटा हुवे कह्या में पिता बुढ़ापो आईरे।

सुध बुध सारी खोवे, मांचो दे पकड़ाईरे ॥८॥ सुणजो

कदाचित् परवश ना पड़े तो काल खड़ो सर सांधीरे।

धन वचन सुणजो भाव से, लो भातो बांधीरे ॥९॥ सुणजो

गृहस्थावास –

स्त्री आदि के काम भोग अत्यन्त निम्न कोटि के हैं–तुष के समान सार रहित है तथा अल्प काल तक ही टिकने वाले हैं।

संसार के स्त्री–पुरुष विश्वास पात्र नहीं हैं। जब तक स्वार्थ है तभी तक वे साथ देंगे। उनमें माया-कपट वहुत होता है उनका अंतर्बाह्य एक रुप नहीं है।

काम भोग नर्क–तिर्यंचादि नीच गति में ले जाते हैं।

गृहस्थावास प्रमादमय जीवन है उसमें धर्म करणी के लिए यथेष्ट समय मिलना दुर्लभ है।

काम भोगों से आतंकादि मरणांतिक रोग पैदा होते हैं।

चिंतित गृहस्थ हृदयाघात (हार्ट फैल) आदि से काल कवलित हो जाते हैं, अतः चिंता 'चिता' के समान है।

उसमें खेती, पशु व्यापार नौकरी और परिवार की चिंताएं बनी की बनी रहती हैं।

अठारह ही पाप करने पड़ते हैं ७/८ कर्म बंधते रहते हैं।

गृहस्थी के धन, मकान, स्त्री आदि चोर जार राजादि लूट लेते है और अग्नि–पानी में वे नष्ट हो जाते हैं।

संयम—(दशवैकालिक चूलिका)

संयम में इतना सुख अधिक है, जितना की अनुत्तर विमानवासी देवों को भी नहीं है। ऐसा सुख मोक्ष में कभी छूटेगा नहीं।

गुरुदेव की संयम रुप शिक्षा यद्यपि कटु है, तो भी सुखदायिनी है, व माया रहित एकांत हित चिंतक है, अतः विश्वास पात्र है।

परिषह विजयी को संयम से उत्तम गति मिलती है।

'संयम' प्रमाद रहित जीवन है। इसमें आठों पहर धर्म करणी के लिये ही हैं।

'संयमी' प्राणी उपवास ब्रह्मचर्यादि से प्रायः निरोग रहता है।

'संयमी' वाचना, पृच्छना, आवर्त्तना, अनुप्रेक्षा और धर्म कथा आदि स्वाध्याय तथा शुक्ल ध्यान में सुख प्राप्त करता है।

इसमें प्रासुक आहार पानी, वस्त्र पात्र शय्या आदि वस्तुएं सफलता से सुलभ होती हैं।

अठारह ही पापों से छुटकारा और कर्मों की निर्जरा होती रहती है।

'संयम धन' को कोई भी लूटने और भ्रष्ट करने में समर्थ नहीं हैं।

(४)

रुक्मणी का वैराग—

— हो जी पटरानी गोविंद की —

हो जी पटरानी गोविंद की कोई राधा रुक्मण खास । जिनवरजी.
वैराग तो जवरो चढ्यो वाणी सुनी रिष्ठ नेमी पास ॥ जिनवरजी.
धन-धन वाणी प्रभु आपकी, वाणी में परम वैराग ॥जि. टेर॥
हो जी या वाणी सुणवा मली, केई आवे सुर-नर चाल । जिन.
भरीरे सभामें बोले रुक्मणीजी, म्हेंतो संयम लेवा दयाल ।जिन.१।
हो जी निज घर आई कहे कथ ने कांई शीष नमाई हाथ । जिन.
चतुर गति का दु:ख से कंपी, म्हाने आज्ञा दो त्रिलोकीनाथ । जि.२
हो जी कृष्ण कहे सुण राधका कई जिम सुख हो तिम कीजो ।पट.
आछा भाव आज पलट्या थे तो अणी भव मुगति लीजो :पट.३
हो जी मोछव करयो श्रीकृष्णजी कांई तत्क्षण स्नान कराय ।जिन.
गहना-आभूषण पहराविया कांई मणि मोती नवसर हार ।जिन.४
हो जी शिविका मांही बिठाविया कांई वाजा बाजे कई भांति ।जिन.
मध्य वाजारे चालतां कांई आया जिहां जगनाथ ।जिन.५
हो जी माधव कहे रिष्ट नेमी भणी कांई अंवर पुष्प समान ।जि.
शिष्यणी भिक्षा देऊं आपने कांई तारजो श्री भगवान ।जिन.६
होजी गहना आभूषण खोलिया कांई पहरिया सती का वेश ।जिन.
श्री मुख से संयम लियो जिने देखे केई नरेश ।जिन.७
होजी जक्षिणीजी रा शिष्यणी हुवा विनयकर भण्या ग्यारे अंग ।जि.
कर्म खपाय केवल पामिया काँई पाम्या सुख अभंग ।जिन.८
होजी कृष्ण सरिखा ज्यांरा पति कांई रुक्मण सरिखि नार ।जिन.
परण्यां कैसा भाव सूं कांई चढ़ते भाव लियो संयम भार ।जिन.९
हो जी उगणीस वासठ साल में कांई संजीत शेखे काल ।जिन.
चौथमल मुनि इम भणे कांई मेरे गुरु हीरालाल ।जिन.१०

मन हर्षे मेरा तन सरसे—

मन हर्षे मेरा तन सरसे मैं जाऊँ प्रभु के द्वार रे।
पाऊँ दर्शन मंगल कारी ॥टेर॥ सुदर्शन

करुणा सागर जगहित कारी, प्रभुजी आज पधारे।
राजगृही के बाहर वन में, जग के भव्य सहारे ॥
सन्मति-जगके भव्य सहारे ॥
दर्शन को पद कज फरसन को जाऊँ न्हाने ज्ञान फुंहाररे ॥पाऊँ द.
मत मचले वंदन यहीं करले मेरे वत्स सुदर्शन लालरे।
प्राण हरे अर्जुन माली ॥टेर॥ माता.

घट घट के भावों को जाने, हैं प्रभुजी उपकारी।
नमन करे स्वीकार यहीं से वे विभु महिमाधारी ॥ वेविभु........
हम आकुल हैं बस व्याकुल हैं, वे देख रहे सब हाल रे ॥
प्राण हरे अर्जुन माली........

प्रभुजी देखे मैं नहीं देखूं, यह दुविधा है भारी।
दर्शन करलूं वाणी सूनलूं हरलूं मोह खुमारी ॥
माता हरलूं........
क्यूं घर में बैठा रहूं, छूं चरण करूं विहार रे ॥ पाऊं दर्शन........
धर्म-कार्य में पहला साधन वत्स ! क्यों यूं ही हारे।
दया हमारी कर एकाकी वल्लभलाल हमारे। बेटा वल्लभ........
मैं जननी यह तेरी पत्नी, सुन के दुख पाति अपार रे ॥प्राण........
यह तन जिसका पहला साधन, उसीलिए खप जाए।
अर्हत प्रभुका ले लूं शरणा, संकट सब टल जाए ॥ माता संकट....
ले दया-सहारा, लाल तुम्हारा, रच देगा सुखी संसार रे ॥ पाऊँ....
"कायर हैं हम जाओ बेटा, वीर की जय जय बोलो"।
"रोती हूं पर कहती हूं मन से, जन-जन का पथ खोलो ॥
सब वीर की जय-जय बोलो।

दुख हरना प्रभु रक्षा करना लेना तेरा भक्त संभालरे ॥

जय जय हो हे वीर तुम्हारी॥

धन्य सुदर्शन निर्भय होकर प्रभु दर्शन को जावे।
अर्जुन माली के काज सुधारे, पुर जन सुखी हो जावे।

नगर के दुख सभी टल जावे॥

यों अर्जुन और सेठ सुदर्शन दिल में अहिंसा धार रे॥ पाऊँ........

(६)

मां बाप ने भूलशो नहिं—

भूलो भले बीजू बधू, मां बाप ने भूलशो नहि!
अगणित छे उपकार एना, एह विसरसो नहि ॥१॥
पत्थर पूज्या पृथ्वी तणा त्यारे दीठू तुम मुखडु।
ए पुनीत जनना कालजा पत्थर बनी छुन्दशो नहिं ॥२॥
काढी मुखे थी कोलिया मुखमा दई मोटा कर्या।
अमृत तणा देनार सामे जहर ऊगलशो नहिं ॥३॥
भीने सुई पोते अने सूके सुवाड्या आपने।
ए अमी मय आँख ने भूलीने भींजवशो नहिं ॥४॥
पुष्पो बिछाव्या प्रेम थी जेणे तमारा राह पर।
ए राहबर नी-राहपर कंटक कदी बनशो नहिं ॥५॥
लाखो लडाव्या लाड़ तमने कोड़ सौ पूरा कर्या।
ए कोड़ ना पुरनार ना कोड़ पुरवा भुलशो नहिं ॥६॥
लाखो कमाता हो भले मां वाप जेमाँ ना ठर्या।
ए लाख नहीं पण राख छे ए मानवु भुलशो नहिं ॥७॥
संतान थी सेवा चहो, संतान छो सेवा करो।
जेवू करो तेवू भरो ए भावना भुलशो नहिं ॥८॥
धन खरचता मलशे बधू माता पिता मलशे नहिं।
जग जीवन एना चरणनी चाहना भुलशो नहिं ॥९॥

(७)

आतम बल ही है –

आतम बल ही है, हां सब बल का सरदार – आतम........

आतम बल वाला अलवेला निर्भय होकर देता हेला।

लड़कर सारे जग से अकेला लेता बाजी मार ॥ आतम............

कैसी भी हो फौज भयंकर, तोप मशीनें हो प्रलयंकर।

आतम-बली रहता है बेडर, देता सबको हार ॥ आतम............

चाहे फांसी पर लटकादे, भले तोप के मुंह उड़वादे।

आतम-बली सबको ही दुआदे, कभी न दे धिक्कार ॥ आतम........

लेता है आतम बल धारी, स्वतंत्रता सब जग की प्यारी।

पराधीनता दुख संहारी करे सुखी संसार ॥ आतम............

प्रतिहिंसा का भाव न लाता, सदा शांति का गाना गाता।

सारा सोता देश जगाता, कर नीति-प्रचार ॥ आतम............

आतम-बली है जग में नामी, इसमें कछु नहीं है खामी।

बनो इसीके सच्चे हामी, तज पशु-बल अहंकार ॥ आतम........

(८)

धन्य अर्जुन माली –

धन्य अर्जुन माली, क्षमा तपधारी तारी आत्मा —

श्री वीर प्रभु पे संयम लेकर, होगये शुद्ध अणगार।

बेले-बेले करे पारणा, षट काया प्रतिपालजी ॥ धन्य १ ॥

उनहीज राजगृही के अंदर फिर रहे घर-घर द्वार।

देख मुनि को बहु नरनारी बोले बिगर विचारजी ॥२॥

रेरे निर्लज्ज, दुष्टी पापी अधर्मी ठग दुख दाय।

पेट-भरण के काज आज यो माथो लियो मुंडायजी ॥३॥

कोई कहे पितु मातु पुत्र को मार्या इण चाण्डाल।
बहिन-बेनोई-भुवा-भाणजी भ्रात भगिनी नारजी ॥४॥
कइक लकड़ी-पत्थर करीने कईक डंडों से मारे।
कइक लगावे कुत्ता काटना, फिर बोले मुख से गारजी ॥५॥
मुनि समता रस सहे परिषह नहीं तन क्रोध लगार।
वे सब सच्चे हैं नर नारी मैंने किया संहारजी ॥६॥
बिन भुगत्या बदला नहीं छूटे, ज्ञानी वचन है खास।
तप-क्षमा-भण्डार मुनिजी सम भावे सहे त्रासजी ॥७॥
षट् मासा तक कर्म बाँधिया ते षट् मास मंझार।
शुभ परिणामे भावना भावत आवत गुण उजवारजी ॥८॥
असण पाण कोई वक्त मिले नहीं, सिर देवे कोई फोड़ी।
धर्म शुक्ल बहु ध्यान ध्याय कर अष्ट कर्म दिया तोड़ी ॥९॥
केवल ले मुनि गये मोक्ष में अनंत गुणों के धामी।
षट्मासा लग संयम पाली सिद्ध अवस्था पामीजी ॥१०॥

(६)

एवंता मुनिवर नाव तिराई बहता नीर में

एवंता मुनिवर नाव तिराई बहता नीर में—
पोलास पुरी नगरी को राजा विजयसेन भूपाल।
श्री देवी-अंग उपन्या सरे एवंता कुमार हो ॥ एवंता. १ ॥
बेले-बेले करे पारणा गणधर पदवी पाया।
भगवंता की आज्ञा लेइने गोतम गोचरी आयाजी ॥ एवंता. २ ॥
खेल रह्या था खेल कँवरजी, देख्या गौतम आता।
घर घर माही फिरे हींडता पूछे इसड़ी बातांजी ॥ एवंता. ३ ॥
अशनादिक लेवन के काजे निर्दोषन म्हें हेरां।
पकड़ अंगुली कँवर एवंता लाया गौतम लेरांजी ॥४॥

माता कहे अहो पुण्यवंता भली जहाज घर आणी ।
हर्ष चित्त हो उदार भाव से वहराया अन्नपाणीजी ॥५॥
लारे लारे चाल्या कँवरजी भेंट्या मोहटा भाग ।
वचन सुण्या जब भगवंतजी का, आयो मन वैराग्यजी ॥६॥
घर आई माता ने नमीने अनुमत की अरदास ।
सुणी बात पुत्र की माता, आयो मन में हांसजी ॥७॥
थूं कांई समझे साधपणा में, बाल अवस्था थारी ।
उत्तर ऐसा दिया कँवरजी मात कहे बलिहारीजी ॥८॥
जाणूं सो नहीं जाणूं माता नहीं जाणू सो जाणूं ।
'कब मरूंगा' यह नहीं जाणूं यथा कर्म म्हें जाणूंजी ॥९॥
तीन लाख सोनैया काढ़ो श्री भण्डार के मांही ।
दोय लाख का ओघा-पातरा एक लाख दो नाईजी ॥१०॥
सब को मना के दीक्षा लीनी, बने बाल अणगारजी ।
भगवंता का चरण भेंटिया धन ज्यांरा अवतारजी ॥११॥
वर्षाकाल बरसिया पाछे मुनिवर ठंडले जावे ।
पाल बांध पानी में पातरां नाव जाण तिरावेजी ॥१२॥
नाव तिरे म्हारी नाव तिरे यों मुख से शब्द उच्चारे ।
साधां के मन शंका उपनी किरिया लागे थारेजी ॥१३॥
भगवंत भाखे सब साधां ने भक्ति करो थे यांकीजी ।
हीलना निंदना मती करो ये चरम शरीरी जीवजी ॥१४॥
भगवंतारा वचन सुणीने सबही शीष नमाया ।
एवंता की हुँडी सिकरी आगम में फरमायाजी ॥१५॥

(१०)

काली ओ राणी–(स्तवन)

काली ओ राणी, सफल कियो अवतार
थें तो पामी छो भवो दधिपार ॥टेर॥
कोणिक रायनी छोटी माता, श्रेणिक नृप की नार।
वीर जिणंद की वाणी सुणने, लीनो संजम भार हो ॥१॥
चंदन वाला जैसी गुराणी, नित-नित नमी चरणार।
विनय करी ने भणी अंग ग्यारे निर्मल बुद्धि अपार हो ॥२॥
सुमति गुप्ति शुद्ध संयम पालत चढ़ी हो परिणामा की धार।
आज्ञा लइने निज गुरणी की, तपस्या मांडी है सार हो ॥३॥
शरीर–शक्ति जाणी आराध्यो रत्नावली–तप नो हार।
चार लड़ी सम्पूर्ण कीनी, आठ में अंग अधिकार हो ॥४॥
पांच वर्ष तीन मास दो दिन कम लागो इतनो काल।
धन्य महासती तप आराध्यों वंदन वारम्वार हो ॥५॥
आठ वर्ष कुल संजम पाल्यो कर्म किया सब छार।
जन्म जरा अरु मरण मिटायो पहुंची मोक्ष–मझार ॥६॥
मुनि नंदलाल तणा शिष्य गायो शहर बिलाड़ा मझार।
ऐसी सती का सुमरण सेती वरते मंगलाचार हो ॥७॥

(११)

तप बड़ोरे संसार में

तप वड़ो रे संसार में। जीव उज्जवल थावे रे॥
कर्म–रूप इंधन जले। शिवपुर वेग सिधावेरे॥
तपस्या सूं देव सेवा करे। घरे लक्ष्मी पिण आवेरे॥
ऋद्धि-सिद्धि सुख-सम्पदा। आवागमन मिटावे रे॥

नो इह लोगट्ठयाए तव महिट्ठिजा,
नो पर लोगट्ठयाए तव महिट्ठिजा,
नो कित्तिवण सद्द सिलोगट्ठयाए तव महिट्ठिजा,
नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तव महिट्ठिजा ॥

(१२)

बालो पांखा बाहिर आयो—

(पालने में माता की शिक्षा)

बालो पांखा बाहिर आयो, माता बैण सुनावे यूं ।
म्हारी कूंख दिपाइजे रे बाला, म्हें थने सखरी घूंटी द्यूं ॥
तेज कटारी नालो मोड्यो, मोड़त नालो बोली यूं ।
कर्मों की फौजां में रे बाला सत्य विजय कर लाइजे थूं ॥
मेड़ी चढ़कर थाल बजायो, थाल बजावत बोली यूं ।
चार खूंट चौखंड़े रे बाला, नौवतड़ी घमकाईजेथूं ॥
कुवे पूजकर फलसे आई फलसे बड़ती बोली यूं ।
फलसा में ढ़ोलां रे ढ़मके, आरतड़ी करवाइजे थूं ॥
गोदी सूतो बालो चूंघे, माता कान सुनावे यूं ।
धोला दूध में कायरता को, कालो दाग न लगाइजे थूं ॥
सोवन पालने बालो झूले, झोटत झोटत बोली यूं ।
इतनी बार हिलाइजे पृथ्वी, म्हें थने जितना झोटा द्यूं ॥
इतना काम करीजे रे बाला, जद जाणूली जायो थूं ।
पुत्र जायकर रही बांझड़ी, नहीं तर म्हें समझूंली यूं ॥

(१३)

जगत के तारने वाले–

जगत के तारने वाले, जगत में संत जन ही हैं।
उन्हें उपमा कहो क्या दें, अपन से वे अपन ही हैं॥
सकल सुख–भोग तज करके, जगत–कल्याण को निकले।
मनोहर महल जिनके फिर, भयंकर शून्य वन ही हैं॥१॥
अटल संयम सुमेरु के, शिखर पर संत वैठे हैं।
जिधर देखो उधर उनके, अमन के गुल चमन ही हैं॥२॥
सुधा की खोज में दुनियां, वनी फिरती है क्यों पागल।
सुधा तो संत लोगों के सदा मंगल वचन ही है॥३॥
कुल्हाड़ी से कोई काटे, कोई आ फूल वरसावे।
लिए वरदान रहते हैं, अजब सारे चलन ही है॥४॥
स्वयं पर वज्र भी टूटे तो, हँसते ही रहेंगे पर।
दुखी को देख रो उठते, दया के तो सदन ही हैं॥५॥
हृदय की हूक से हर दम, हजारों वार वंदन हो।
'अमर' अमरत्व के दाता संत पावन चरण ही हैं॥६॥

(१४)

मरणो जाणणो–

मरणो जाणणो या मनखां मोटी वात — मरणो०........
मरणो मरणो सारा केवे मरे सभी नरनारी रे।
मरवा पेली जो मर जावे तो वलिहारी रे॥ मरणो०........
जीवा सूं सगलो जग राजी, मरणो कोई न चावेरे।
राजा-रंक सभी ने सरखो तो पिण आवेरे॥ मरणो०........

गुरु गोविंद रो ब्राह्मण भूल्यो बालक दोय चिणायारे।
भामाशाह धणिया ने धन दे पाछा लाया रे।। मरणो०........
मरवाने जो जाणे वीसूं पाप कर्म नहीं होवे रे।
सुख दुखरी परवाह नहीं राखे, प्रभु ने सेवे रे।। मरणो०........
मरने जवाव राम ने देणो, या जीरे मन लागी रे।
चतुर चरण वणीरा सेवे वो बढ़भागी रे।। मरणो०........

(१५)

होवे धर्म प्रचार--

होवे धर्म-प्रचार प्यारे भारत में —
ईर्ष्या करे न कोई भाई, दिल में सब के हो नरमाई।
सरल बने नर नार प्यारे० ।।१।।
जुवा मांस शराब व चोरी, दूर हो जग से रिश्वत खोरी।
ना खेले कोई शिकार प्यारे० ।।२।।
मुनि-गुणी जन जितने आवें, सारे उनसे लाभ उठावें।
लेवे जन्म-सुधार प्यारे० ।।३।।
तजकर निंदा, झूठ-लड़ाई, गले मिले सब भाई भाई।
बहे प्रेम की धार प्यारें० ।।४।।
मुख से कोई न देवे गाली, बोली बोले इज्जत वाली।
मीठी और रसदार प्यारे० ।।५।।
महावीर के बने पुजारी, सत्य-अहिंसा व्रत के धारी।
मंत्र जपें नवकार प्यारे ।।६।।
धर्म का झंडा फहरे फर-फर, नाम वीर का गूंजे घर-घर।
होवे जय-जयकार प्यारे० ।।७।।
'चंदन' और कहे क्या ज्यादा, वेश व जीवन हो सब सादा।
सादा हो घरबार प्यारे० ।।८।।

युवकों को प्रतिज्ञा--

हम सब करें प्रतिज्ञा, अब नियम से रहेंगे।
सच्चे हृदय से कहते, हम प्रेम से रहेंगे ॥टेर॥
हम सब हैं बहिन भाई, जैसी है दोनों आंखें।
पंछी को जैसी प्यारी, होती है दोनों पांखें ॥
डाली पे फूल खिलते, हम इस तरह खिलेंगे ॥१॥ सच्चे.
इकरंग ढंग होगा, इक धारा एक किनारा।
रेखाएं टूट करके एक होगा रूप प्यारा ॥
मिलती है गंगा यमुना, ऐसे गले मिलेंगे ॥२॥ सच्चे.
चमकेगा वीर शासन, नेतृत्व एक होगा।
इक शिक्षा दीक्षा होगी, चौमासा एक होगा ॥
विचरण आलोचनाएं, आचार्य एक देंगे ॥३॥ सच्चे.
अनुशासन एक और इक, अनुशास्ता हमारे।
चलना कदम मिलाकर, उनके जो हों इशारे ॥
हम भी करेंगे वैसा, आचार्य जो कहेंगे ॥४॥ सच्चे.
साधु और साध्वीजी, श्रावक व श्राविकाएं।
आबाल वृद्ध सारे, आज्ञा में धर्म मानें ॥
असहयोग होगा उनसे, विपरीत जो चलेंगे ॥५॥ सच्चे.
होगा न तेरा मेरा, जो होगा सब हमारा।
गूंजेगा सब दिशा में, हम एक हैं का नारा ॥
बूंदों के मेल से ही, जीवन हिलोर लेंगे ॥६॥ सच्चे.
संपति समाज के हित, हम सब करें समर्पण।
शिव सुख तभी मिलेगा, कहता है जैन दर्शन ॥
जो राग द्वेष त्यागे, वे ही सुखी बनेंगे ॥७॥ सच्चे.

तुम पाये हो अनमोल बोल

तुम पाये हो अनमोल बोल गुरु दयाल के।
इन बोल को रखना मेरे बन्धु संभाल के॥
तुम ही अनंत हो लखो अंतर निहाल के॥ इन.॥

अपने नियम सुनीति को निष्ठा से पालना।
सत्संग में जाकर सदा जीवन उजालना॥
अच्छे नमूने दीजिये निर्दोष चाल के॥ इन.॥

निर्वद्य–पक्ष में सदा अपना यह लक्ष्य हो।
अपने अनूप रूप लाभ में सुदक्ष हो॥
पावन बनो अपनी बुराइयां निकाल के॥ इन.॥

वच्चों ! यह जिंदगी सदा, सद्गुण की कोष हो।
अपने शुभाशुभ कर्म में ना हर्ष–रोष हो॥
पावो अमर आशीष, बल सिद्धार्थ लाल के॥ इन.॥

गुण और के कहो; कहो अपनी बुराइयां।
रखना सदा अपने में अपनी निघाईयां॥
सच्चे बनो, अच्छे बनो अपने खयाल के॥ इन.॥

रंच भर आलस्य हो नहीं चल विचार में।
पुरुषार्थ व्रत लेकर चलें प्रत्येक चाल में॥
सबको बनादें एकरंग अरु एक चाल के॥ इन.॥

गर ग्राम–राष्ट्र धर्म से 'रमेश' प्यार हो।
निर्दोष चमकते हुए अपने विचार हो॥
शिष्य अपन हैं गुरु गणेश लाल के॥ इन.॥

(१८)

भूलना सीखो

जो वस्तुएं मन मोहक नहीं होवें, क्लेश दायक होवें, अपने हृदय में कटुता एवं कर्कशता उत्पन्न करती हों उन वस्तुओं को भूल जाना चाहिए। उन्हें अपने मन मस्तिष्क से निकाल देना चाहिए ।

किसी ने आपका तिरस्कार किया हो, अपमान किया हो, गाली दी हो, अविवेक पूर्ण वर्ताव किया हो, नीचता दर्शाई हो तो आप उन्हें भूल जाओ।

स्वयं के द्वारा किया हुवा पर उपकार भूल जाओ।

आपके मित्रों के व अन्य के दोष भूल जाओ।

अपनी निराशाएं एवं विडम्बनाएं भूल जाओ।

सभी विडम्बनाएं, सभी व्यथाएं, सभी कटु वचन, सभी कष्ट दायक कृत्य, तीव्र वेदनाएं इन सबसे चिपके न रहो, सबको भूल जाओ ।

(१९)

जिनराज बधावो बाज्या नगारा

जिनराज वधावो, वाज्या नगारा जीत्या दाव का ।।टेर।।
मनुष्य जन्म को जीत लिया है, आच्छी करनी कीनी ।
मेट दिया सव फंद जगत का, उत्तम पदवी लीनी ।।१।।
देव लोक का वासी खासी, पाया लील विलासी ।
कइयक जीव-भवों के अंतर पंचम गत जा पासी ।।२।।
कर्म-कोट को ढ़ाय दिया है, जीत लिया सव वैरी।
धोखा मेट दिया दुर्गत का आण अखंडित फेरी ।।३।।

जिनवाणी का ढ़ोल बजाया, सब जग माँही सुणिया।
सिंहनाद – प्राक्रम की पूरी वैरी दूर भगाया ॥४॥
जय जयकार हुआ सब जगमें, मुख-मुख यश उच्चारे।
कलश बधावे कामण्या सरे, घर-घर मंगल गावे ॥५॥
गौतम नामां गणपति ध्यावो, दया मात को पूजो।
साधु-सत्या का शरणा लेलो, ऐसो पंथ नहीं दूजो ॥६॥
जिन शासन का देवी–देवता, सबही सहाय करीजे।
दुश्मन का कोई दाव न लागे, भक्त की पीर हरीजे ॥७॥
देवगुरु प्रसाद करीने, सब ही सम्पति पाया।
हीरालाल धर ध्यान चरण में, जीत नगारा गाया ॥८॥

(२०)

म्हारी दया मता

म्हारी दया माता, थने मनाऊँ देवी शास्ता ॥टेर॥
या सम देवी नहीं कोई जगमें हाथा हाथ हजूर।
तुष्ठा तत्क्षण फले कामना दुख जावे सब्र दूर ॥१॥
ज्ञान रूप सिंह की असवारी, तप–त्रिशूल ले हाथ।
हाक धाक करती दुश्मन पर करे रिपु की घात ॥२॥
अष्ट कर्म का चक्र तोड़ने धरी रुंड की माला।
अष्ट प्रकारे धार विभूति गले मोतियन की माला ॥३॥
दानादिक चउ भेद निरति, भुजादण्ड विस्तार।
विनय–मुकुट धारा शीष उपरे ऐसा किया शृंगार ॥४॥
मोक्ष मंदिर की है तू वासी, खासी सुख–आधार।
चार तीर्थ थारे आवे जातरी, भरा रहे दरबार ॥५॥
सत्रहविध संयम को धारे, वाजा का झंकार।
ध्यान ध्वजा थारे उड़े शिखर पर लागे धूंधकार ॥६॥

ऋद्धि-सिद्धि नवनिधि की दाता, भरे अखूट भंडार।
अष्ट पहर थारा मंगल गावे, होरहे जय-जयकार ॥७॥
भूखा ने भोजन अम्बू प्यासा ने शकुन गगन विचार।
जहाज समुद्र मायने सरे दया नो आधार ॥८॥
रोगी ने औषध साथ भूल्याने चौपद ने निज स्थान।
भय पामता जीवने सरे, शरणागत जिमि जान ॥९॥
साठ नाम सिद्धांत में थारा, तू जग-जीवन माता।
सदा काल तेरी ज्योत जागती, षट्-दर्शन मिल गाता ॥१०॥
संसार-समुद्र मां है डूबता तुझ शरणो आधार।
कष्ट पड्या कोई याद करे तो करदे बेड़ा पार ॥११॥
थारी सेव कर्या से माता, घणा जीव सुख पाता।
हीरालाल थारे शरणो आयो, दीजे भव-भव साता ॥१२॥
उन्नीसे चम्मालीस वर्षे चैत्र वदी इतवार।
पूज्य प्रसाद परम सुख पामां गुरु देवा उपकार ॥१३॥

(२१)

उठ भोर भई-टुक जाग सही-

उठ भोर भई टूक जाग सही, भजवीर प्रभु भजवीर प्रभु।
अब नींद-अविद्या त्याग सही भजवीर प्रभु भजवीर प्रभु ॥१॥
जग जाग उठा तू सोता है, अनमोल समय यह खोता है।
तू काहे प्रमादी होता है, भजवीर प्रभु भजवीर प्रभु ॥२॥
यह समय नहीं है सोने का, है वक्त पाप-मल धोने का।
अरु सावधान चित्त होने का, भजवीर प्रभु भजवीर प्रभु ॥३॥
तू कौन कहां से आया है, अब गमन कहां मन भाया है।
टुक सोच यह अवसर पाया है, भजवीर प्रभु भजवीर प्रभु ॥४॥

रे चेतन ! चतुर हिसाब लगा, क्या खाया-खर्चा, लाभ हुआ।
निज ज्ञान जगा तू संभाल हिया, भजवीर प्रभु भजवीर प्रभु ॥५॥
गति चार चौरासी लाख रूला, ये कठिन २ शिव राह मिला।
अब भूल कुमार्ग-विषेमत जा, भजवीर प्रभु भजवीर प्रभु ॥६॥

(२२)

वह शक्ति हमें दो–

वह शक्ति हमें दो दयानिधे ! कर्तव्य मार्ग पर डट जावें।
पर सेवा पर उपकार में हम, यह जीवन सफल बना जावें ॥
हम दीन–दुखी निबलों–विकलों के सेवक बन संताप हरें।
जो हैं भूले-भटके अटके, उनको तारें खुद तिर जावें ॥
छल–द्वेष कपट–पाखंड–झूठ, अन्याय से निश दिन दूर रहें।
जीवन हो शुद्ध सरल अपना, शुचि प्रेम सुधा नित बरसावें ॥
निज आन कान मर्यादा का, प्रभु ध्यान रहे अभिमान रहे।
जिस देश जाति में जन्म लिया, बलिदान उसी पर हो जावें ॥

(२३)

सफलता का सूत्र–

खड़ा हिमालय बता रहा है, डरो न आंधी पानी में।
खड़े रहो अपने ही पथ पर, कठिनाई तूफानों में ॥
डिगो न अपने प्रण से तो फिर, सब कुछ पा सकते हो प्यारे।
तुम भी ऊंचे उठ सकते हो, छू सकते हो नभ के तारे ॥
खड़ा रहा जो अपने पथ पर, लाख मुसीबत आने में।
मिली सफलता उसको जग में, जीने में मर जाने में ॥

(२४)

सीखो–

फूलों से तुम हँसना सीखो, भँवरों से तुम गाना।
सूरज की किरणों से सीखो, कोमल भाव बहाना॥
वायु के झोंको से सीखो, कोमल भाव वहाना।
दूध और पानी से सीखो, मिलना और मिलाना॥
बेल और वृक्षों से सीखो, सब को गले लगाना।
तरुवर की डाली से सीखो, फल पाकर झुक जाना॥
वर्षा की बूँदों से सीखो, सव को सरस बनाना।
मेंहदी के पत्तों से सीखो, घिस-घिस रंग चढ़ाना॥
पतझड़ के पेड़ों से सीखो, दुख में धीरज लाना।
परवाना दीपक से सीखो, मरकर प्रेम निभाना॥
सत्पुरुषों के जीवन से सीखो, अपना चरित्र बनाना।
अपने सद्गुरुओं से सीखो, जीवन सफल बनाना॥
जगदाधार–धरा से सीखो, सहन शीलता लाना।
स्रोत और सरिता से सीखो, अविरल कदम बढ़ाना॥

(२५)

जिन देव तेरे चरण में--

जिन देव तेरे चरण में मुझे ऐसा दृढ़ विश्वास हो।
जीवन-समर में हे प्रभो! वस एक तेरी आश हो॥टेर॥
कर्तव्य-पथ से जो डिगाने, विघ्न गण आवें मुझे।
संतोष भक्ति अरु दया का, मंत्र मेरे पास हो॥१॥
निज भाव-भाषा-देश का, गौरव मुझे दिन रात हो।
निज-धर्म हित यह प्राण हो, अरु मन कभी न निराश हो॥२॥

सब विश्व में ऐसी बहादूं प्रेम की मंदाकिनी।
दिल में तड़फ हो प्रेम की अरू प्रेम-जल की प्यास हो ॥३॥
संसार सागर में न भटके नाव मेरी बीच में।
मैं खुद खिवैया बन सकूं वह शक्ति मेरे पास हो ॥४॥
मैं बालपन में ब्रह्मचारी रह सभी विद्या पढ़ूं।
यौवन-दशा में बन के श्रावक अंत में अणगार होऊँ ॥५॥
यह आत्मा ही बन सकी है 'वीर' खुद परमात्मा।
हे नाथ! मेरी आत्मा का अंत मोक्ष-निवास हो ॥६॥
सद्गुरु चरण में नित्य होवे, भाव भीनी वंदना।
जय जिनेन्द्र अरु नमन का प्रचार घर-घर द्वार हो ॥७॥

(२६)

जय जय जय भगवान-

जय जय जय भगवान - जय जय जय भगवान।
अजर-अमर अखिलेश निरंजन-जयति सिद्ध भगवान ॥टेर॥
अगम अगोचर तूं अविनाशी निराकार निर्भय सुख राशी।
निर्विकल्प-निर्लेप निरामय निष्कलंक-निष्काम ॥१॥
कर्म न काया, मोह न माया, भूख न तिरखा रंक न राया।
एक सरुप अनूप अगुरु लघु निर्मल ज्योति महान ॥२॥
हे अनंत! हे अंतर्यामी! अष्ट गुणों के धारक स्वामी।
तुम बिन दूजा देव न पाया, त्रिभुवन में अभिराम ॥३॥
गुरु निर्ग्रन्थों ने समझाया, सच्चा प्रभु का रूप बताया।
तुममें मुझमें भेद न पाऊँ ऐसा दो वरदान ॥४॥
सूर्यभानु है शरण तिहारी प्रभु मेरी करना रखवारी।
अब तुम में ही मिल जाऊँ मैं ऐसा हो संधान ॥५॥

(२७)

जीवन सफल बनाना--

जीवन सफल बनाना, बनाना प्रभु वीर जिनराजजी ।।टेर।।
मन-मंदिर में घुप है अंधेरा, ज्ञान की ज्योति जगाना ।। जगाना ।
धधक रहा है द्वेष-दावानल, प्रेम-पयोधि बहाना बहाना ।
बीच भँवर में नैया फंसी है, झटपट पार लगाना लगाना ।।
न्याय मार्ग का पक्ष न छोड़ूं, दुश्मन हो सारा जमाना ।
प्राणी मात्र को सुख उपजाऊँ, चाहुं न चित्त दुखाना दुखाना ।।
मैं भी तुमसा जिन बन जाऊँ पर्दा दुई का हटाना हटाना ।
अमर निरंतर आगे बढ़ूं मैं कर्तव्य-वीर बताना बताना ।।

(२८)

—: मैं कैसा प्राणी रे :—

जिनवर जिनवर मुझे बताओ मैं हूं कैसा प्राणी रे ।
तुमसे कुछ भी छुपा न जग में तुम हो केवल ज्ञानी रे ।।
कभी सिद्ध गति पाने वाला, मैं हूँ भविजन प्राणी रे ।
या शाश्वत् संसार का वासी मैं हूँ अभवि प्राणी रे ।।१।।
यदि भव्य तो क्या आध्यात्मिक, शुक्ल पक्ष शुभ पायो रे ।
या अब तक मुझ पर यह भौतिक कृष्ण पक्ष ही छाया रे ।।२।।
यदि शुक्ल पक्षी क्या पाइ, निश्चय से समदृष्टि रे ।
या अनादि से अब तक मैं हूँ निश्चय मिथ्या दृष्टि रे ।।३।।
यदि समदृष्टि क्या हो पाया मैं परिमित संसारी रे ।
या अशुद्ध परिणति के कारण हूं, अनंत संसारी ।।४।।
यदि परिमित संसारी तो क्या भावों से व्रतधारा रे ।
या हूँ केवल द्रव्य व्रती ही द्रव्य लिंग ही धारा रे ।।५।।

यदि व्रती क्या अंत समय में पंडित मृत्यु होगी रे।
या परिणाम विगड़ जावेंगे, अशुभ मृत्यु ही होगी रे ॥६॥
यदि शुभ मृत्यु क्या परभव में सुलभ बनेगी वोधी रे।
या धन कर्म है संचित जिससे होगी दुर्लभ बोधी रे ॥७॥
यदि सुलभ बोधी तो क्या मैं होऊंगा आराधक रे।
या समकित व्रत दुषित करके होऊंगा विराधक रे ॥८॥
यदि आराधक क्या होऊंगा उस भव चरम शरीरी रे।
या दीर्घ स्थिति से मैं होऊंगा क्या अचरम शरीरी रे ॥९॥
काल अनंत रहे प्रभु तुम हम एक शरीर निवासी रे।
पर मैं यहीं पड़ा हूं तुम तो वन गये मोक्ष निवासी रे ॥१०॥
जान रहे मेरा सब कुछ पर रहे न उत्तर दाता रे।
अव मैं किसके पास में जाऊं कोई न दृष्टि आता रे ॥११॥
देव भी कोई नहीं सहायक, जिससे काम बनाऊं रे।
श्री मंदिर भी दूर विराजे, वहां लग कैसे जाऊं रे ॥१२॥
नहीं कोई लब्धि ज्ञान भी ऐसा, जो पूरे मुझ आशा रे।
तीव्र भाव से सतत हृदय में जाग रही जिज्ञासा रे ॥१३॥
केवल कहते पारस जिसको, ये जिज्ञासा होती रे।
बहुधा वह भवि शुक्ल पक्षी, और सम्यक् दृष्टि होता रे ॥१४॥
तू कर पुरुषार्थ शुद्ध उत्तम, उत्तम ही फल होगा रे।
क्यों कि जग में पुरुषार्थ के, अनुरूप फल होता रे ॥१५॥

(२९)

तारो-तारो जिनवर मुझको:—

तारो तारो जिनवर मुझको अपना विरद विचार के संभार के
मैं आया हूँ तेरे द्वार करम से हार के, प्रभु आया हूं ॥टेर॥

ज्ञान नहीं कुछ भान नहीं, मुझे थोड़ा भी श्रद्धान नहीं ।
धरम प्रधान मिला, पर पहचान नहीं ॥
सच्चा यह सुख का मारग हार के..............................॥१॥ प्रभु
आन नहीं, वलिदान नहीं, कुछ व्रत का भी मंडाण नहीं ।
निर्वाण-यान मिला, पर मुझे ध्यान नहीं ॥
व्यर्थ ही मानव भव को हार के ॥२॥ प्रभु आया हूँ
शान नहीं, संठाण नहीं मेरा मन भी हा वलवान नहीं,
पात्र महान मिला पर दिया दान नहीं,
आशाएं फिर भी दिल से धार के ॥३॥ प्रभु
पार करो उद्धार करो यह सफल मेरा अवतार करो ।
ओऽऽतारणहार प्रभु अरज स्वीकार करो ॥
कहे यों "केवल" शिष्य पुकार के ॥४॥ प्रभु ।

(३०)

रे चेतन पोते तू पापी--

रे चेतन पोते तू पापी, परना छिद्र चितारे तू ।
निर्मल होय कर्म कर्दमसू निजगुण अवु नितारे तू ॥टेर॥
सम्यग्दृष्टि नाम धरावे सेवे पाप अठारह तू ।
नर्क निगोद थकी किम छूटे, अंतर शल्य न निवारे तू ॥१॥
परमेश्वर घट-घट को साखी जांकी शरम न धारे तू ।
कुंभी पाक नरक में पड़सी, जो पर हियो न ठारे तू ॥२॥
जिमतिम करने अपनी शोभा, इण जग मांहि दिखावे तू ।
प्रकट कहाय धर्म को धोरी, अंतर भर्या विकारे तू ॥३॥
परनिंदा मतपिंड भरीजे, आगम-साख संभारे तू ।
विनयचंद्र कर आतम निंदा, भव-भव दुष्कृत्य ठारे तू ॥४॥

(३१)

चेतन रे तू ध्यान–

चेतन रे तू ध्यान आरत किम् ध्यावे,
तू तो नाहक कर्म बंधावे ॥टेर॥
जो जो भगवंत भाव देखिया, सो सो ही बरतावे।
घटे बढ़े नहीं रंच मात्र भी, काहे कूं मन डुलावे ॥१॥
चिंता-अग्नि जलत शरीरा, बुद्धि बल विनसावे।
शोकातुर बीते दिन रयनी, धर्म ध्यान घट जावे ॥२॥
सुख से निद्रा रात न आवे, अन्न उदक नहीं भावे।
पहरण ओढ़न चित नहिं चावे, तो राग रंग न सुहावे ॥३॥
सुख नहिं रह्या तो दुख किम रहसी, ये भी तो गुजरावे।
कर्म बांधे सो तो भुगत्यां सरसी क्यों आतम दंडावे ॥४॥
बिन भुगत्यां कबहु नहिं छूटे अशुभ उदय जब आवे।
साहूकार शिरोमणी सो ही हंस-हंस करज चुकावे ॥५॥
प्रभु-स्मरण और तपस्या करता दुष्कृत्य रज झड़ जावे।
ज्येष्ठ कहे "समता रस" पीया तुरत ही आनंद पावे ॥६॥

(३२)

जय बोलो महावीर की–

जय बोलो महावीर की जय बोलो ॥ टेर ॥
पलट के रखदी जिसने सब रेखाएं तकदीर की – जय बोलो. २
वीर के गुण आलापने वालों, वीर का पथ अपनाओ।
हिंसा-चोरी झूठ-कपट छल-स्वार्थ दूर भगाओ ॥
ऊँच-नीच और राग द्वेष की दीवारों को ढ़ाओ।
आपस के मत-भेद भुलाकर सत्य को गले लगाओ ॥
पहले इतना करलो, तब जय बोलो महावीर की जय बोलो ॥१॥

हो कोई स्थानकवासी या हो कोई श्वेताम्बर ।
इससे हमको क्या लेना है कि हो कोई दिगम्बर ॥
आपस के झगड़ों की खाई अब तो मिलकर पाटो ।
एक वृक्ष की शाखा है मत इक दूजे को काटो ॥
जोड़ो अब भी जोड़ो, बिखरी कड़ियां जंजीर की ।
पहले इतना करलो, तब जय बोलो ॥ २ ॥

जैन-धर्म के ठेकेदारों, संभलो अब भी जागो ।
झूठी मान प्रतिष्ठा के चक्कर को अब तो त्यागो ॥
समय को देखो बातें समझो, तजो आपसी झगड़ा ।
पहले इनको छोड़ो, तब जय बोलो..........॥३॥

वीर के शासन में हिल मिल कर गीत अभय के गाते ।
शेर गाय मिल एक घाट ही पानी पीने आते ॥
किन्तु आज हम मानव होकर मानव को ही सताते ।
महावीर की वाणी को नाहक बदनाम कराते ॥
हिलमिल रहना सीखो, तब जय बोलो.......... ॥ ४ ॥

होटलों और क्लबों में होती, शर्मों हया नीलाम ।
आज शराफत चौराहों पर होती है बदनाम ॥
गली गली और गांव गांव में खुलती है जो मधुशाला ।
वीर ही जाने मेरे देश का क्या है होने वाला ।
पीना पीलाना छोड़ो, तब जय बोलो..........॥ ५ ॥

जलसे और जलुसों से ही कार्य न होगा पूरा ।
गायक वक्ता बुलवाने से फर्ज न होगा पूरा ॥
कथनी करनी एक करो तब जाकर के कुछ होगा ।
वीर प्रभु जयंति महोत्सव सफल तभी बस होगा ॥
वीर प्रभु के सिद्धांतों का पालन ही तब होगा ।
गिरतों को विनय संभालो, तब जय बोलो महावीर की ॥६॥

(३३)

स्वागत गुरुदेव का–

सुनो भाई-बहनो, गुरुजी पधारे अपने शहर में (गांव में)
मुनिवर पधारे ॥टेर॥

दूध-खीर का भोजन पाकर भूखे मन हर्षाते।
वैसे गुरु का दर्शन पाकर धर्मी–मन हर्षाते ॥१॥
अंधों को यदि आँख मिले तो कैसे आनंद पाते।
वैसे गुरु की सेवा पाकर धर्मी आनंद पाते ॥२॥
निर्धन को चितामणी पाकर जैसे आनंद होता।
वैसे गुरु की मीठी वाणी सुन २ आनंद होता ॥३॥
मेरे तन मन आनंद छाया रोम रोम हुलसाया।
घट-घट मेरे हर्ष न मावे कैसे जाय बतायाजी ॥४॥
घरके धंधे खोटे फंदे झटपट दूर हटाओ।
भाई वहिनों सवही मिलकर गुरु का लाभ उठाओ ॥५॥

(३४)

शिबिर विदा–

यह शिविर ज्ञान का धाम क्रिया का स्थान।
छूट रहा प्यारा, वह रही है अश्रु धारा ॥टेर॥
यहां ऐसे गुरुवर पाये थे, जो हम सव के मन भाये थे।
हां–छूट रहे हैं वे सव ही अणगारा वह रही. ॥१॥
तन मन से शिक्षण देते थे, जिन धर्म का मर्म वताते थे।
हा छूट रही वह मनहर अमृत धारा। वह रही. ॥२॥
सामायिक मय दिन जाता था, जव जप तप भी हो जाता था।
हां छूट रहा वह अवसर अति हितकारा। वह रही ॥३॥

यहां दुर्गुण मिटते जाते थे, और सद्गुण बढ़ते जाते थे।
हां छूट रहा उन्नति का समय हमारा। वह रही. ॥४॥
जो अवतक कभी न पाया था, वह यहां आकर सव ही पाया।
वह याद रहेगा जीवन भर उपकारा। वह रही ॥५॥
वे दिन फिर कव आवेंगे, जव ऐसा अवसर पायेंगे।
है पड़े बीच में वैरी दिवस मास ग्यारा। वह रही ॥६॥
यहां हमने जो कुछ देखा है, सीखा है और जो समझा है।
खुद पालेंगे और करेंगे जगत पसारा। वह रही. ॥७॥
अव एक प्रार्थना सब सुनना यह शिविर योजना दृढ़ करना।
जिससे होगा बच्चों का शीघ्र सुधारा। वह रही. ॥८॥
पारस से यों केवल कहते, जो प्रवचन प्रभावना करते।
वे पाते है पद तीर्थंकर श्रेयकारा वह रही. ॥९॥

(३५)

शाश्वत सुख दातार पर्यूषण-(संवाद)

चलो वन्धु ! आओ, पर्यूषण-पर्व मनाओ, आनंद पावो।
यह शाश्वत सुख दातार है ॥
चलो बन्धु ! आओ, क्यों जीवन व्यर्थ गमाओ, मौज उड़ाओ।
क्या जीवन बारम्बार है ?
पूर्व जन्म के शुभ कर्मों से, यह नर-भव है पाया।
नर्क और तिर्यंच योनि से, भटक-भटक कर आया ॥
सुने और गहन वन में, जव सिंह हिरण को पाता।
तव उसकी रक्षा करने को, कौन सामने आता ॥
इसी तरह यमराज झपटता, जव प्राणी के ऊपर।
है ऐसा वलवान कौन, जो उसे वचावे भूपर ॥
यदि हम थोड़ीसी आयु, हम औरों को देवें।
तो कुछ काल उन्हें दुनियां में, हम जो नित रख लेवें ॥

किंतु आयु का लेना देना, कब किसने देखा है।
आयु कर्म की हे ज्ञानी! यह प्रबल अमिट रेखा है ।।
मेरे बन्धु! हम पर कर्मों का भार है ।। चलो बन्धु. ।।१।।
भोले भाई कर्म धर्म का क्या तू जाल बिछावे।
यहां नहीं कोई जो तेरी बातों में आजावे ।।
मेरे बन्धु! धन ही जीवन का सार है ।। चलो बन्धु. ।।२।।
धन पर क्यों इठलाता भाई, धन का कौन ठिकाना।
छोड़ यहीं पर धन और वैभव, हम सबको है जाना ।।
भरत खंड के अधिपति चक्री जितने भू पर आये।
वासुदेव बलदेव काल के भीषण गाल समाए ।।
प्रबल शक्ति सम्पन्न सैन्य, उनका सा और कहां है।
किन्तु धरातल पर क्या उनका नाम-निशान रहा है ।।
अक्षय धन परिपूर्ण खजाने शरण जीव को होते।
तो अनादि के धनी सभी इस भूतल पर ही होते ।।
पर न कारगर धन होता है, बन्धु मृत्यु की वेला।
राजपाट सब छोड़ चला जाता है, जीव अकेला ।।
मेरे बन्धु! क्या सुखमय यह संसार है ।। चलो बन्धु ।।३।।
जग को झूठा कह दोगे, तो सत्य यहां पर क्या है?
यहां नहीं कुछ भी सन्मुख तो और कहां फिर क्या है?
मेरे बन्धु! यह सुखमय सब संसार है ।।४।। चलो बन्धु.
एक तरफ रोगी है रोता, एक है धन को रोता।
गया एक का पुत्र सदा को, गया एक का पोता ।।
मेरे बन्धु! क्या सुखमय यह संसार है ।।५।। चलो बन्धु.
खाना पीना मौज उड़ाना, सैर सपाटे करना।
कल की चिंता आज करें क्यों, हमको है जब मरना ।।
मेरे बन्धु! क्या जीवन बारंबार है ।।६।। चलो बन्धु.

वर्तमान में भूल रहे हो, पर भविष्य की सोचो।
आगे भी क्या गति बनेगी, मन में जरा कुछ सोचो ॥
मेरे बन्धु ! तप ही जीवन का सार है ॥७॥ चलो बन्धु.
जीवन का है सार इसीमें, मीठे माल उड़ाना।
ऊँचे महल अटारी में रह, नित नव मौज उड़ाना ॥
मेरे बन्धु ! अब कैसे कहो विचार हैं ॥८॥ चलो बन्धु.
रोगों के घर महल तुम्हारे, निर्धन के अभिशाप।
महल और धन धान्य सभी ये, महा भयानक पाप ॥
मेरे बन्धु ! बस धर्म एक सुखकार है ॥९॥ चलो बन्धु.
धर्म-अधर्म और पाप-पुण्य की तुमने रट लगाई।
पैसा ही परमेश्वर सच्चा, इस जग में है भाई ॥
मेरे बन्धु ! बिन ज्ञान के जीवन भार है ॥१०॥ चलो बन्धु.
जिस धन पर तुम प्राण लुटाते, जीवन के अनुरागी।
उसको ही हैं मुनि ठुकराते, देवलोक के भागी ॥
मेरे बन्धु ! यह धन दुर्गति का द्वार है ॥११॥ चलो बन्धु.
स्वर्ग-नर्क जो नहीं दीखते, उन्हें सत्य तुम जानो।
दीख रहे जो आँखों आगे, उनको झूठा मानो ॥
मेरे बन्धु ! यह कैसे कहो विचार हैं ॥१२॥ चलो बन्धु.
मात पिता दो दिन के साथी, स्वारथ का है नाता।
मरने पर भी तुम्हीं बताओ, कौन साथ है जाता ॥
एक जन्म की पुत्री मरकर, है पत्नी बन जाती।
फिर आगामी भव में माता बनकर पैर पुजाती ॥
पिता पुत्र के रूप जन्मता, वैरी बनता भाई।
पुत्र त्याग कर देह कभी, बन जाता सगा जमाई ॥
है संसार सराय जहां पर, पथिक आय जुट जाते।
लेकर टुक विश्राम राह में, अपनी अपनी जाते ॥
मेरे बन्धु ! यह झूठा जग का प्यार है ॥१३॥ चलो बन्धु.

माना जग है झूठा सारा, पर जीवन अनमोल।
व्रत उपवासादिक में तन को क्यों देते हो घोल ॥
मेरे बन्धु ! यह देह बड़ा सुकुमार है ॥१४॥ चलो वन्धु.
ज्यों सोना अग्नि में तपकर है निर्मल वन जाता।
त्यों तप की अग्नि में तपकर कर्म-मैल धुल जाता ॥
मेरे वन्धु ! तप-मुक्ति-दातार है ॥१५॥ चलो वन्धु.
तप की वात कही जो तुमने सहज समझ में आई।
पर यह दया-दान में कैसे मुक्ति है वतलाई ॥
मेरे वन्धु ! क्या सहज मुक्ति का द्वार है ॥१६॥ चलो वन्धु.
हम जैसे हैं प्राण सभी के, सुख-इच्छुक हैं प्राणी।
परम अहिंसा धर्म जगत में. यों कहते हैं ज्ञानी ॥
मेरे वन्धु ! हिंसा में हाहाकार है ॥१७॥ चलो वन्धु.
सत्य तुम्हारी बातें लगती आज समझ में पाया।
यौवन की घड़ियों में सारा जीवन हाय विताया ॥
मेरे वन्धु ! दुःख मुझको आज अपार है ॥१८॥ चलो वन्धु.
दुखी हृदय न करो वन्धुवर ! करो धर्म-आराधन।
धर्म-ध्यान की झड़ी लगादो, शुद्ध वनेंगे तन-मन ॥
मेरे वन्धु ! फिर सन्मुख सुख तैयार है ॥१९॥ चलो वन्धु.

(३६)

(कंकर कंकर से मैं पूछूं. शंकर मेरा कहां है—तर्ज)
कदम कदम पै ठोकर खाये, एमन समझ न पाये,
फिर पछताये – फिर पछताये ॥ टेर ॥
मोह माया का है जाल विछा मन, पंछी इसमें आन फंसा।
दिन रात मुसीवत पाये, रहा न गीत प्रभु के गाये ॥ फिर. ॥
ओ पाप जिना लई करदा एं, दिन रात ये मिट-मिट मरदा एं।

कोई साथ बने न घरदा एं, जब जान लबाँ पै आए ।। फिर. ।।
ओ धन यौवन के मान में आ, नादान बड़े अभिमान में आ।
उस भगवान को क्यों भूल गया, तैंने बी. एल. याद दिलाए ।।फिर.।।

(३७)

प्रभु भक्त तेरा जो इंसान होगा,
भगत से वो इकरोज भगवान होगा।
लगन तेरी दिलमें उसीके ही होगी,
जो गुणवान होगा जो पुण्यवान होगा।
तेरी रट लगाकर यह दिल कह रहा है,
जपेगा जो तुझको न हैरान होगा।
सुबह शाम तेरी करेगा वो भक्ति,
जिसे इल्म अपना तेरा ज्ञान होगा।
चौरासी के बंधन वो तोड़ेगा चंदन,
जिसे हर समय ही तेरा ध्यान होगा।

(३८)

सदा याद अर्हम् किया कर किया कर,
ये है नाम पावन लिया कर लिया कर।
प्यास अपने दिल की मिटाना जो चाहे,
प्रभु प्रेम प्याला पिया कर पिया कर।
तू तृष्णा के जख्मों को बनकर भक्तजन,
सबर की सुई से सिया कर सिया कर।
सुखों की है ख्वाहिश अगर तेरे दिल में,
तो औरों को सुख तू दिया कर दिया कर।
बना करके चंदन सफल अपना जीवन,
तू लाखों वर्षों तक जिया कर जिया कर।

नमिराजर्षि-इन्द्र संवादः-

आज मिथिला के निवासी

१ आज मिथिला के निवासी रो रहे राजन अहो ।
यह मचा कुहराम भारी क्यों भला कारण कहो ॥
२ एक था उद्यान सुन्दर बीच मिथिला ग्राम में ।
औ एक उसमें वृक्ष जो सबको शरण था बाग में ॥
फल-फूल से वह था लदा वह पक्षियों का वास था ।
सघन और वह था समुन्नत चूमता आकाश था ॥
एक दिन आई वहाँ आंधी बड़े ही जोर की ।
और गिर पड़ा वह वृक्ष तब चित्कार थी चहुँ ओर की ॥
रुदन जैसे पक्षियों ने था किया उस काल में ।
त्यों रो रहे मिथिला निवासी भी यहाँ इस हाल में ।
१ तीव्र अग्नि की लपट में महल सारा जल रहा ।
और फिर देखो प्रभंजन तीव्र गति से चल रहा ॥
जल रहा रनवास सारा देखते राजन् ! नहीं ।
क्या कभी ऐसा हृदय पत्थर बनाते है कहीं ?
२ जल रही मिथिला भले ही पर क्या मेरा जल रहा ?
है यहाँ मेरा भला क्या जो मुझे वह खल रहा ॥
भगवती दीक्षा कि जिसने धारली है भाव से ।
वह पुत्र और कलत्र की चिंता करें क्यों चाव से ॥
१ पुत्र से बढ़कर जगत में कौन अवलंबन यहाँ ।
इस लिए प्यारा दुलारा है वही जीवन यहाँ ॥
खो दिया जीवन यहाँ का फिर क्या पालेंगे कहो ।
देखना फिर लुट चलेगी प्यार की दुनियां अहो ॥

२ कोई प्रिय हमको नहीं, है वैसे अप्रिय भी नहीं।
शत्रुता जब है नहीं तो मैत्री फिर कैसे रही॥
आत्मदर्शी जो मुनि हैं वे सुखी संसार में।
भव-बंधनों को त्याग कर वे मग्न हैं विस्तार में॥

१ छोड़ पुरजन और परिजन जा सकेंगे आप तब।
खाई बनाकर दे सुरक्षित इस किले को आप तब॥
तोप बंदूकें सजी हो बुर्ज शस्त्रों से सजे।
आक्रमण कोई न फिर तब कर सकेगा हे सखे॥

२ श्रद्धा हमारा नगर तप संयम है उसकी अर्गला।
खींचा प्रकोटा है क्षमा का यों सुरक्षित सर्वदा॥
क्यों डरें हम शत्रुओं से मेट देंगे शत्रुता।
वमन कर देगा गरल वह जोड़ लेगा बंधुता॥

१ महल और प्रासाद समुन्नत आप बनाओ।
विविध कला से सखे! हमारे उन्हें सजाओ॥
वैभवशाली नगर आपका ऐसा होवे।
इस भूतल पर उसका सानी कहीं न होवे॥

२ मेरा है गन्तव्य दूर सुन मेरे भाई।
महल-अटारी और यहां की सभी कमाई॥
आयेगी क्या काम मुझे तो मुक्ति जाना।
अतः सखे! है व्यर्थ तुम्हारा हमें बताना॥

१ ऐसे नृप हैं यहां अभी मौजूद अनेकों।
जो न नमे हैं नमा डालिए पहले उनको॥

२ लाखों योद्धा भले ही भुजबल से हों जीते।
पर अपने को जो नहीं जीता सो हैं रीते॥
अपने से ही युद्ध करो हे चेतन प्यारे।
कौन मित्र है कौन शत्रु हैं यहाँ हमारे॥

१ सोना चाँदी और रत्न धन-धान्य खजाना।
भरकर राजन् आप भले साधु बनजाना॥
२ सोने चाँदी के ढिग हों कैलाश समान अनंता।
पर लोभी मन की तृष्णा का आ न सकेगा अंता॥
वढ़ता है ज्यों लाभ लोभ भी बढ़ जाता है।
यों तृष्णा का, अंत कभी ना आ पाता है॥
जीवन के रंगीन स्वप्न सव बह जाते हैं।
अंत समय में दूत मौत के जब आते हैं॥
पुत्र और धन धाम यहाँ का सभी खजाना।
रह जाता है,यहाँ, सभी कुछ साथ न जाता॥
१ साधु पुरुष हो सत्य तुम्हारा कहना भाई।
कही अभी जो बात समझ में मेरे आई॥
धन्य तुम्हारा सम्यग्दर्शन धन्य तुम्हें व्रतधारी।
चरण-वंदना सादर होवे तुमको देव हमारी॥
देव लोक का इन्द्र आपके सन्मुख आया।
जान आपका दृढ़ निश्चय मन में हर्षाया॥
चरण-वंदना आप स्वीकारो राजन्! मेरी।
बड़ी खुशी से दीक्षा लेवो करो न देरी॥
दशों दिशा में वज्र-घोषणा यह करता हूँ।
राजर्षि हैं आप अर्घ्य चरणों में धरता हूं॥
धन्य तुम्हारे इस निश्चय को, धन्य तुम्हें व्रतधारी।
आप क्षमा कर देंगे, हमको भूलें हुई हमारी॥

अनाथी मुनि-श्रेणिक राजा-संवाद -

१ ओ रुप के भंडारी मुनिवर, ये राजा वनेगा तेरा नाथ है।
तेरी मैं करूंगा पालना, क्यों छोड़ा दुनियां का तूने साथ है॥
२ ओ मगध देश के राजन् ! क्या मौत भी तेरे हाथ है।
मेरी क्या करेगा पालना, तू खुद ही राजन् अनाथ है॥
१ हाथी घोड़े धन धान्य सभी से राज्य भरा यह विशाल है।
वैभव का साथ है, दीनों का नाथ है कैसे कहत हो अनाथ है॥
तुम कहते किसे हो अनाथ है हमें समझाओ पूरी बात है।
तेरी मैं करूंगा पालना० ॥१॥
२ माना कि तेरे हाथी हैं घोड़ा, रंभासी हैं पटरानियां।
लक्ष्मी का लाल है, राज्य विशाल है वैभव में वीते जवानियां॥
पर एक वताऊँ तुझे बात है सुनना तू ध्यान के साथ है।
मेरी क्या करेगा पालना० ॥२॥
१ धन-धान्य और कुटुम्ब-परिवार का तुजे मिला नहीं साथ है।
भाई-वन्धु और सुत नारी का पाया न तूने प्यार है॥
किन कष्टों से तू घवराया है क्यों संयम तेरे मन भाया है।
तेरी मैं करूंगा पालना० ॥३॥
२ धन का भंडार था. मेरे परिवार था, सेठ का लाल कहाता था।
भाई वन्धु थे. सभी सुख चैन थे, पत्नी का प्यार भी पाता था॥
वीते आनंद में दिन रात है नित्य रहते भी हरदम साथ हैं।
मेरी क्या करेगा पालना० ॥४॥
तो फिर ऐसी क्या वात हुई मुनिवर ! कि आपको यह जोग धारण करना पड़ा ?

२ एक दिवस हुई वेदना भारी रोगों ने आकर घेर लिया।
भाग दौड़ मच गई, कतारें लग गई वैद्यों ने आ उपचार किया॥
कोई पैर दबावे दिन रात है कोई देवों को जोड़े हाथ हैं।
मेरी क्या करेगा पालना० ॥५॥

१ क्या इतनी दौड़ धूप एवं उपचार के बाद भी आपका रोग–
शान्त नहीं हुआ ?

२ धन भी धरा रहा, घर भी भरा रहा मिटा सका नहीं रोग कोई।
हाजर हजार थे, सबही बेकार थे, दूर खड़ा रहा आया जोई॥
हुई चला चल की बात है, छोड़ी आशा सभी ने एक साथ है।
तेरी मैं करूंगा पालना० ॥६॥

१ कहो कहो मुनिराज ! उसके बाद फिर क्या हुआ ?

२ इतने में ही एक भावना जागी प्रभु को मैंने याद किया।
रोग को निवारदे बिगड़ी सुधारदे साथमें प्रण भी यह धार लिया॥
छोड़ूंगा जगका साथ है अब तूं ही प्रभु मम नाथ है।
मेरी क्या करेगा पालना० ॥७॥

बिजली सी चमकी, रोगों पर दमकी, वेदना सारी भाग गई।
उसी क्षण छोड़ा जग नेह तोड़ा आत्मा मेरी जाग गई॥
सुना भेद भरी यह बात है, बोल कौन अनाथ सनाथ है।
मेरी क्या करेगा पालना० ॥८॥

१ माना मैंने मुनिराज,आत्मा का श्रेष्ठ राज संसारका झूठा साथ है।
मोह को जीतले, कर्मो को काटले वही अनाथों का नाथ है॥
कांच जैसी यह काया है, तू इसी लिये घबराया है।
तेरी तूं ही करेगा पालना, मुझे माफ करो मुनिराया है॥
ज्ञान ज्योति जागी श्रेणिक सौभागी समकित व्रत आराध लिया।
जीवों की दया कर धर्म दलाली कर गोत्र तीर्थंकर बाँध लिया॥
मिले अनाथी जैसे गुरु नाथ है, जीत जागना तेरे हाथ है।
तेरी तूं ही करेगा पालना, मुझे माफ करो मुनिराज है॥

सांभल भव प्राणी, वेलारा वायाओ मोती नीपजे ॥टेर॥
पूरव पुण्योदय नर भव मिलीयो, उत्तम कुल अवतार।
काया निरोगी ने लम्बो आऊखो, देश आरज पायो सार॥१॥ सां.
पांचों इन्द्रि थाने पूरी मीली, अवसर नहीं आसी वारम्वार।
रत्न चिंतामणी हाथे पामीने, खरची लीजोरे परभव लार॥२॥सा.
साधु समागम जिन वचन साँभली, सरधा सेठी रे दिल में धार।
अवसर चुकीयो फिर नहीं आवसी, कीजो भलाई पर उपकार॥३॥
एक दिन पंडीतजी कहे सुन ब्राह्मणी करुं हुँकारो तीन होज वार।
जुवार हांडी में तत्क्षण नाखीजे, थासी मुक्ता फल आनंद कार॥४॥
विधि पाड़ोसन सगली सांभली, जुवार आछी कर चूल्हा पास।
काना दे बैठी सुणे डोकरी, मोती होनेरी मन में आश॥५॥
करियो हुँकारो ब्राह्मण तिण समय,गफलत में रह गई घरकी नार।
सुणियो पड़ोसन तिमहिज करीयो,थया मुक्ताफल अतिही सार॥६॥
थोड़ासा मोती ले आई डोकरी, लेवो पंडितजी मोती अनमोल।
थारे परसादे मोती निपज्या, ब्राह्मण सुन मनमें करे तोल॥७॥
इण दृष्टांत सु नर भव पामीने, दीजो सुपात्र कर सुं दान।
छत्तो लक्ष्मी की लावो लीजिये, दिन दिन संपत्ति दूनी जान॥८॥

(४२)

(तर्ज— भोलेनाथ सा निराला कोई और नहीं)

प्यारे साधु पना निभाना, कोई खेल नहीं।
प्रभु के चरणों में चढ़ जाना, कोई खेल नहीं॥टेर॥
सब जीवों की रक्षा करना, मैत्री भाव हृदय में भरना।
शांति करुणा रस वरसाना, कोई खेल नहीं॥१॥
चोरी न करना, झूठ न कहना, जीवन भर ब्रह्मचर्य से रहना।
जग की दौलत को ठुकराना, कोई खेल नहीं॥२॥

सर्दी हो अग्नि नहीं तपना, गर्मी हो पंखा नहीं झलना।
वर्षा में छाता न लगाना, कोई खेल नहीं ॥३॥
कभी न कोई सवारी करना, साईकिल मोटर रेल न चढ़ना।
नंगे पांवों पैदल चलना, कोई खेल नहीं ॥४॥
भोजन हाथों से न बनाना, घर-घर भीख मांग कर लाना।
जैसा मिल जावे सो खाना, कोई खेल नहीं ॥५॥
आजकी दुनियाँ रंग-रंगीली, बड़ी मोहिनी बड़ी छबीली।
इसकी माया में न लुभाना, कोई खेल नहीं ॥६॥
कभी महल सुन्दर मन भावन, कभी वृक्ष के नीचे आसन।
प्रभु का नाम सुमर सो जाना, कोई खेल नहीं ;।७।
सोना चाँदी रत्न न चाहना, मठ मंदिर घर नहीं बनवाना।
केवल गीत प्रभु के गाना, कोई खेल नहीं ॥८॥

(४३)

दान की महिमा

अरे मुसाफिर जगमें आकर, कर जाना कुछ दान।
दान की महिमा बड़ी महान॥
तीन लोकमें होते रहते, दानी के गुणगान।
दान की महिमा बड़ी महान॥
दानशील तप भाव बताया, नाम दानका पहले आया।
जिसने जो कुछ वैभव पाया, पूर्व दान की है सब माया॥
उंची गतियों में जाने का, प्रथम यही सोपान ॥१॥
नदियां सागर को दे देवे, सागर से बादल पा लेवे।
फिर बादल जग पर बरसावे, वही पुनः नदियों में आवे॥
कमी नहीं होने देता है, दानी के भगवान ॥२॥

क्षण भंगुर यह कच्ची काया, इससे भी यह चंचल माया।
खाली हाथ यहां था आया, पूर्व दान फल से कुछ पाया ॥
यहीं पड़ा रह जाय वैभव, दो दिन के मेहमान ॥३॥
अपना पेट सभी भरते हैं, अपने लिये सभी पचते हैं।
धन से जो परहित करते हैं, नाम अमर जग में करते हैं ॥
जनम जनम तक हो जाता है, दानी का एहसान ॥४॥
कर्ण महान कहाया कैसे, नाम दधीचि ने पाया कैसे।
भामाशाह पुजाया कैसे, नाम चमकते मोती जैसे ॥
तन की शोभा शील धर्म है, धन की शोभा दान ॥५॥

(४४)

तेने शोभे नहिं ते काम

असंख्य कीड़ा रेशम केरा, उष्ण थता जलमां होमाय।
ले तंतुना मखमल मशरू, अतलस आदि कापड़ थाय ॥
खरीद करी शौखीनो आपे, हिंसा ने उत्तेजन आम।
जैन विरद जे कोई धरावे, तेने शोभे नहिं ते काम ॥१॥
त्रस जीवो ने उंचा टांगी, ताप दई ने तावे तन।
ते रस माँथी बने बंगड़ियो, बाल रमकड़ा अने बटन ॥
कचकड़ानी कंई कंई वस्तु, लोग लई दई दोढ़ा दाम ॥२॥
बहु विध सुन्दर कापड़ जेनी, चलक जोई ने चित्त हरखाय।
चलक लाववा चर्बी माटे, पशु हजारों रोज हणाय ॥
दया धर्मीयों आ कार्योने, शी रीते समझे सुखधाम ॥३॥
अनेक इंडा मद माखोंना, संहारी मध लावे छे।
रवो अने पड़सुदी तेमां, जीवांत झीणी आवे छे ॥
हाथी दाँतनी चीजी होसे, वापरनारा गामोगाम ॥४॥

तन तणी मजबूती माटे, माछलिओना मलता तेल ।
पाप तणी नहीं परवा धरता, पैसा वाला करता पहेल ॥
वहु मोली वाटलियो ठांसे, बन्या अरेरे बिना लगाम ॥५॥
कपट करी भोला भरमावी, परना नाणा पचेल आप ।
ए संपत्ति थी सुख ना होय, विघ विघना प्रकटे परिताप ॥
कीर कहे जे रस्ते आव्युं, आखर जाशे तेय तमाम ॥६॥

बत्तीस प्रतिज्ञाएं –

१ नित्य प्रातः सपरिवार गुरुवंदन एवं प्रार्थना करना ।
२ घर में बड़ों को नमस्कार करना ।
३ सामायिक में मौन रखते हुए धार्मिक ग्रंथों एवं पुस्तकों का पठन करना । व्यर्थ की बातें नहीं करना ।
४ नित्य-प्रति गाँव में विराजित संत-सतियों के दर्शन करना । परिवार और पड़ोसियों को साथ लाने का प्रयत्न करना ।
५ धर्म स्थानों में बारीक वस्त्र व अनावश्यक अधिक आभूषण पहिन कर नहीं जाना ।
६ परस्पर मिलने पर जयजिनेंद्र करना ।
७ पाँच नमस्कार मंत्र गिनकर भोजन करना, झूठा न डालना ।
८ वहनों को पर्दा नहीं करना, अन्यों से छुड़ाने का प्रयत्न करना ।
९ अशिक्षित भाई वहनों को अक्षरी ज्ञान का प्रयत्न करना ।
१० आवश्यकता होने पर वृद्ध-वीमार आदि की सेवा करना ।
११ वालक-वालिकाओं में धार्मिक शिक्षण का प्रवंध करना ।
१२ वालक-वालिकाओं को संस्कारित एवं सभ्य वनाना ।
१३ घर के लोगों को सूचित कर वाहर जाने की आदत डालना ।
१४ घर के लोगों को पूछने पर सत्य वात कहना ।
१५ कभी भी अपशब्दों का प्रयोग नहीं करना ।

१६ किसी धर्म की निंदा नहीं करना, सत्य-धर्म की प्ररूपणा करना।
१७ अन्य की निंदा न करते हुए, "परस्पर प्रेम वढ़े" ऐसी प्रवृति करना ।
१८ प्रतिदिन दानार्थ कुछ न कुछ निकालना।
१९ कूड़ा-कर्कट मैला आदि नियत डव्वे या स्थान पर डालना।
२० सप्ताह में छुट्टी के दिन परिवार के वीच में कुछ समय वैठकर घरेलू समस्याओं पर विचार कर, कठिनाइयों का हल (समाधान) निकल सके ऐसा प्रयत्न करना ।
२१ विवाहादि के अवसर पर व्यर्थ के रीति-रिवाजों को न वढ़ाना, तथा वर्तमान रीति-रिवाजों को भी कम करते हुए सादगी से काम लेना।
२२ दहेज व तिलक का ठहराव नहीं करना।
२३ मृत्यु भोज, स्वयं बंद करना व भाग नहीं लेना।
२४ मृत्यु आदि दुःखद प्रसंगों पर रोना नहीं, आर्तध्यान करना नहीं, करवाना नहीं, तथा शव पर अनावश्यक वस्त्र आदि का प्रयोग नहीं करना असमय में न रोना, न रूलाना।
२५ जहाँ वली चढ़ती हो, ऐसे तथा कथित देव स्थानों में जाकर मस्तक नहीं झुकाना एवं भेंट पूजा नहीं चढ़ाना। जाने वाले, करने वालों को समझाना-रोकना।
२६ रेशम-चर्वी आदि के हिंसक वस्त्र नहीं पहनना।
२७ घर या पड़ोस में कोई वीमार हो तो संभाल किये विना सोना नहीं, दिन में एकवार जरुर संभालना।
२८ वच्चों को क्रोध में, वेसुध होकर नहीं पीटना।
२९ किसी पर कलंक नहीं देना, झगड़ा चोरी नहीं करना।
३० मादक-नशीले पदार्थ काम में न लेना, आत्म हत्या न करना।
३१ स्वपति संतोष रुप सदाचार का पालन करना।
३२ गंदे गीत न गाना-अश्लील चित्रपट नहीं देखना।

—: पैंतालीस-नियम :—

१ प्रत्येक कार्य में समय की पाबंदी-टाइम टेबल के अनुसार अवश्य ही होनी चाहिये।

२ रात्रि को निर्धारित समय पर शयन की तैयारी
Early to bed and early to rise, makes a man healthy wealthy and wise.

३ शय्या पर पर्यंकासन से बैठकर मन-वचन-काया की, एकाग्रता पूर्वक ग्यारह नमस्कार मंत्र का ध्यान करना।

४ तत्पश्चात् कम से कम १५ मिनिट का चिंतन करना।

५ जागरण-समय का मन को आदेश देते हुए........
" सागारी संथारे " का प्रत्याख्यान करना।

६ उत्तम निद्रा के लिये अंग-प्रत्यंग की शिथिलता पूर्वक श्वासोच्छ्वास की गणना करना।

७ प्रातः उठकर शय्या पर ही अपने वस्त्र तथा शरीरादि को न देखते हुए आँखें बंद कर पर्यंकासन से बैठकर ११ वार नमस्कार मंत्र का ध्यान करना।

८ तत्पश्चात् शय्या से नीचे उतर कर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह कर सुदेव-सुगुरु, सुधर्म के प्रति अटूट श्रद्धा पूर्वक तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार सविधि वंदन करना।

९ अपने से वड़े सभी पारिवारिक सदस्यों को चरण छूकर नमस्कार करना।

१० प्रातःकाल नियत स्थान और नियत समय पर घंटा आधा घंटा स्वाध्याय करना।

११ इसके पूर्व निम्न तीन वातों पर अवश्य ही ध्यान देना :—
१ स्वाध्याय के लिये समय की पाबंदी आवश्यक।
२ सामायिक का वेश वदलना अति आवश्यक।

३ घर में रहे हुए वृद्ध तपस्वी रोगी की देखभाल करने वाला दूसरा नहीं हो तो उनकी शारीरिक वाधाओं की समय के पूर्व निवृति करना वहुत ही आवश्यक है। (धर्म से कर्तव्य बड़ा है)

१२ सामायिक के ५० मिनिटों का १०–१५–२५ मिनिटों में विभाजन करना—

१ प्रथम दस मिनिट में मन की एकाग्रता के लिये हाथ की अनानुपूर्वी के माध्यम से साधना करना।

२ सधे हुए मन में बाद के १५ मिनिट का चिंतन / चिंतन में पूर्व दिवस के दैनिक कार्यों का बारीकी से निरीक्षण करते हुए एक त्रुटि को एक माह के अभ्यास से सर्वथा दूर करना।

३ शेष पच्चीस मिनिटों में महापुरुषों का जीवन चरित्र व उनके द्वारा रचित साहित्य को मनन पूर्वक पढ़ते हुए एक गुण को एक माह के अभ्यास से जीवन में धारण करना। अन्य बातें न करना।

१३ गांव में संत–सतियांजी विराजमान हों तो प्रति दिन दर्शन एवं विधि पूर्वक वंदन करना।

१४ धर्म-गुरूओं के सन्मुख खुले मुंह वार्तालाप नहीं करना।

१५ चवदह नियम का प्रतिदिन स्मरण तथा यथा शक्ति प्रत्याख्यान करना।

१६ दारू–मांस–जुवा–चोरी शिकार पर स्त्री–गमन वैश्या–गमन का एवं मादक द्रव्य का पूर्ण त्याग करना।

१७ गांव में जो भी सदस्य मिले, उनका 'जय–जिनेन्द्र' द्वारा अभिवादन करना, रास्ते में संत–सतियां मिले तो वहीं से घुटने टेककर "पधारिये" कहते हुए वंदन करना।

१८ " क्रिया से कर्म, उपयोग से धर्म, एवं परिणाम से बंध " के सिद्धांत को सदैव स्मरण कर व्यवहारिक जीवन सुधारना।

१९ व्याख्यान में नियत समय पर उपस्थित होना व वहाँ पर मौन रखना, शांति बनाए रखना।

२० पाक्षिक प्रतिक्रमण व आलोचना करना।

२१ प्राणीमात्र पर मैत्री भाव रखना, पानी छानकर पीना।

२२ सद्गुणी आत्माओं के प्रति आदर भाव व गुण ग्रहण की भावना रखना।

२३ दुखी प्राणियों पर सहृदयता पूर्वक अनुकंपा भाव रख उनके दु:खों को यथा शक्ति दूर करना।

२४ विरोधी प्रवृत्ति करने वालों पर तथा शत्रुओं पर भी समभाव रखना (घृणा पाप से पापी से नहीं)
जीवंतु से शत्रुगणा: सदैव येषां प्रसादात् सुविचक्षणोहं।
ये ये माँ प्रतिवाधयंति, ते ते मां प्रतिबोधयंति ॥

२५ जड़-चेतन के भेद ज्ञान पूर्वक, आत्मिक शक्ति पर अटल विश्वास रखना। (आत्मबल ही है सब बल का सरदार)

२६ मोह-ममत्व के परिहार पूर्वक सात्विक प्रेम भाव का विस्तार करना। किसी को नीच समझ घृणा न करना।
"सब विश्व में ऐसी बहादूं प्रेम की मंदाकिनी।
दिल में तड़फ हो प्रेम की अरु प्रेम जल की प्यास हो॥"

२७ क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष-अज्ञान व पापकारी प्रवृत्तियों के त्याग पूर्वक जीवन में क्षमा नम्रता सरलता व निर्लोभता आदि सद्गुणों को धारण कर जीवन का विकास करना।

२८ धार्मिक-पर्वो में सम्मिलित रूप से धार्मिक अनुष्ठान करना।

२९ प्रतिदिन कुछ न कुछ नया ज्ञान सीखते हुए, सीखे हुए ज्ञान की पुनरावृत्ति करना।

३० उत्पन्न शंकाओं का समुचित समाधान प्राप्त करना।

३१ अपनी पुत्र–वधु व जामाता के प्रति पुत्री व पुत्र का सा व्यवहार करना ।

३२ अपने सास-ससुर के प्रति माता-पिता का सा व्यवहार करना।

३३ अपनी जेठानी व जेठ को माता-पिता तथा देवर-देवरानी को पुत्र–पुत्री समझना ।

३४ वड़ों के "सामने नहीं वोलना" उस समय उनकी बात को ध्यान पूर्वक, सुनकर बाद में यदि कोई आवश्यक समाधान हो तो नम्रता पूर्वक निवेदन करना।

३५ अपनी स्त्री के प्रति भी कभी अपमान जनक शव्दों का प्रयोग नहीं करना। भारी अपराध हो जाने पर भी उसे शान्ति से समझाना ।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवता" ।

३६ अपने पति की इच्छा के विरुद्ध कोई भी कार्य कभी न करना।

३७ अपने आश्रित (कर्मचारी) तथा पड़ोसियों के साथ सदैव सद्भावना पूर्ण व्यवहार करना।

३८ अपने बालक–वालिकाओं को धार्मिक शिक्षण नियमित रुपसे प्राप्त कराने हेतु जैन शाला में भेजना। जहां जैन शाला न हो वहाँ उचित व्यवस्था करना।

३९ आगन्तुक का यथोचित सत्कार करते हुए सभी के साथ नम्र तथा मीठे शव्दों से वार्तालाप करना।

४० जहाँ कहीं भी जाने का प्रसंग हो, वहां खान-पान-रहन-सहन आदि में सादगी का ध्यान रखना। घर में भी सादगी हो।

४१ सभा सोसायटी आदि में जाने के पश्चात् उपस्थित सज्जनों का अभिवादन करते हुए यथोचित स्थान पर वैठने का ध्यान रखना ।

४२ अन्य की निंदा व आत्म–प्रशंसा कभी नहीं करना। देखना हो तो अन्य के गुण व स्वदोष देखो ।

४३ दूसरों के प्रति कोई भी कार्य करने के पूर्व यह चिंतन करना कि "यदि यही कार्य दूसरा मेरे प्रति करे तो मुझे कैसा लगे, यदि वह मुझे पसंद न हो तो वह कार्य दूसरों के प्रति न करना"। खोटा तोल माप व मिलावट नहीं करना।

४४ नाच व अश्लील चित्रपट नहीं देखना।

४५ मृत्यु पर रिवाज रूप में रोना नहीं। बारह दिन बाद बैठक रखना नहीं।

आदर्श सभ्यता

१ किसी के मकान में प्रवेश करने से पहले उसकी अनुमति अवश्य ले लेना चाहिए।

२ रेल, तारघर, डाकघर, सभा पुस्तकालय कारखाने आदि किसी भी सार्वजनिक स्थान की लिखी हुई सूचनाओं का उल्लंघन कदापि न करो।

३ नाक का मल, कफ या थूक आदि दीवारों पर, घर के कोनों में, किवाड़ों के पीछे या अन्य किसी सार्वजनिक स्थान पर नहीं डालना चाहिए।

४ केले के छिलके या और भी कोई ऐसी चीज सड़क पर चाहे जहां मत डालो। केले के छिलके पर पैर फिसल जाता है, और कभी-कभी पथिक सदा के लिए घातक चोट खा बैठता है।

५ मार्ग में चलते हुए यदि कोई ठोकर खा जाए और गिर पड़े, तो तुम उसकी दुर्दशा पर हंसो मत। बल्कि सहृदयता से उसके प्रति संवेदना प्रकट कर उसको संभलने में सहायता पहुँचाओ।

६ यदि इधर उधर जाते आते या उठते बैठते किसी पुरुष अथवा स्त्री से तुम्हारा पैर छू जाए तो उससे हाथ जोड़कर झटपट विनम्रता पूर्वक क्षमा मांगनी चाहिए।

७ जिस व्यक्ति से जिस काम के लिए जितने पैसे ठहरा लिए हो उसे उतने ही पैसे दो। उससे कुछ भी कम देने की इच्छा न करो।

८ किसी से वातचीत करते समय हाँ या ना के स्थान पर जी हाँ, जी नहीं आदि बहुत मधुर एवं शिष्ट शब्दों का प्रयोग करो।

९ दो व्यक्तियों की वातों में वीच में बोलना अनधिकार चेष्टा है। यह भयंकर दुर्गुण है। इससे ध्यान पूर्वक छुटकारा पाने का प्रयत्न करो।

१० सोए हुवे व्यक्ति के पास इतने जोर से पैर पटक कर न चलो फिरो जिससे उसकी नींद उचट जाए। सोने वाले के पास बैठकर जोर से हंसना या बोलना भी नहीं चाहिए।

११ अंधा, लूला, लंगड़ा, काना अथवा अंगहीन या पागल मिले तो उसकी हँसी मजाक न करो। जहां तक हो सके उनके साथ आत्मीयता का व्यवहार करो।

१२ कपड़े हमेशा साफ सुथरे पहनों चाहे कम कीमत के और मोटे भले ही हों। अधिक तड़क भड़क के रेशमी या मखमली आदि वस्त्र पहनना उचित नहीं है।

१३ जब कभी गुरुदेव या और कोई अपने से बड़ा पूज्य पुरुष तथा साध्वीजी आदि आपके यहां आए तो उनको झटपट उठकर सम्मान दो और यथा योग्य विधि से वंदन नमस्कार करो।

१४ भाषण सुनने के लिए किसी सभा में पहुँचो तो एकदम वीच में उठकर न चले जाओ। याद रक्खो वक्ता के लिए यह

अपमान जनक व्यवहार है। यदि अति आवश्यक कार्यवश जाना हो तो चालू भाषण पूरा होने पर और दूसरा भाषण प्रारंभ होने के पहले ही चुपचाप धीरे से चले जाओ।

१५ लिखते समय कलम हाथ और कपड़ों को स्याही से लथपथ न होने दो। कलम को साफ करने के लिए अपने हाथ पैरों से और सिर के बालों से मत पोंछो। कलम में स्याही अधिक भर जाए तो इधर उधर मत छींटो। इन सब कामों के लिए अलग वस्त्र का टुकड़ा रक्खो।

१६ किसी की खोई हुई या गिरी हुई वस्तु आपको मिल जाए तो उसे उसके मालिक को लौटा दो। यदि मालिक का पता न लगे तो उसे पुलिस ऑफिस या किसी प्रामाणिक संस्था में जमा करा दो।

१७ यदि कभी किसी दूसरे की पुस्तक पढ़ने को मांगकर ली जाए तो उस पर अपना नाम पता आदि कुछ भी न लिखो। याद रक्खो कि पृष्ठों के कोने न मुड़ जाएँ और वह पुस्तक जैसी ली है वैसी ही पहुँचे।

१८ यदि मांगी हुई कोई भी चीज खो जाए तो उसके मालिक को बदले में नई मंगाकर दो। यदि मंगाकर देने की स्थिति न हो तो उनसे क्षमा मांगो।

१९ किसी से कोई वस्तु लेकर मजाक में भी उसे लौटाते समय फेंकना नहीं चाहिए। जिस प्रेम और सद्भावना से ली थी उसी तरह लौटाओ भी।

२० मांगकर लाई हुई चीज ठीक समय लौटाने का ध्यान रक्खो। चीज, उसके बारबार माँगने पर लौटाई तो आपकी सत्यता कहाँ रही।

—: विनय :—

विनय का अर्थ, वड़ों का आदर करना है। परन्तु विनय का संकुचित अर्थ न कर यदि व्यापक अर्थ करें तो नम्रता है। नम्रता मनुष्य का एक सर्व श्रेष्ठ गुण है और विशेष कर नारी जाति के लिए तो यह वहुत ही आवश्यक है। वह जहां भी रहेगी अपने इस विशेष गुण के प्रभाव से नरक जैसे घर को भी स्वर्ग वना देती है।

कठोर अनुशासन द्वारा नौकर मे भी मन, इच्छित कार्य नहीं कराया जा सकता। हृदय जीत लेने का एक मात्र उपाय है—विनय। विनय गुण जीवन के हर मोर्चे पर ढाल का काम कर व्यक्ति को विजयी वनाता है। यह विश्वास हृदय में धारण करने वाला यशस्वी होता है।

नम्रता से शत्रु भी मित्र वन जाते हैं। नम्र व्यवहार और नम्र वचन सभी को प्रिय होता है। नम्र व्यक्ति घर में ही क्या संपर्क में आने वाले सभी लोगों पर अपना शासन चलाता है और प्रसन्न रखता है। सभी उसके कहने में चलते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि नम्र व्यवहार जादू सा असर करता है।

नम्र व्यक्ति में अभिमान नहीं होता। वह अपने धनी सुन्दर चतुर और गुणी होने का अभिमान नहीं करता। उसकी भावना रहती है कि—

सव विश्व में ऐसी वहा दूं प्रेम की मंदाकिनी।
दिल में तड़फ हो प्रेम की, अरु प्रेम जल की प्यास हो॥

प्रेम चुम्वक शक्ति है, इसके द्वारा वह इन्सान को अपने संकेतों पर चला लेता हैं। विनय नम्रता का यह अर्थ नहीं है कि व्यक्ति नम्रता करते २ कायर और वुजदिल वन जाए। नम्रता और कायरता में वहुत वड़ा अन्तर है। कभी २ आपत्ति के समय

उग्रता भी धारण करनी पड़ती है। जैन धर्म अहिंसा और दया का बहुत बड़ा पुजारी है। वह जीवन में नम्रता विनय और कोमलता को बहुत महत्व देता है। परन्तु वह यह कभी नहीं कहता कि कोई भी व्यक्ति दुराचारी और असभ्य गुण्डों के साथ भी विनय नम्रता का व्यवहार करें, उनकी आजीजी करें। आक्रमणकारी नीच गुण्डों को उग्रता से दण्ड देना ही चाहिए और ऐसा दंड देना चाहिए कि वे सदा के लिए सावधान हो जाएं। विद्या की शोभा भी विनय और नम्रता से है "विद्या विनयेन शोभते"। विद्यावान एवं सद्‌गुणी व्यक्ति विनयी और नम्र होते हैं। कहा भी है –

> नमे जो आंबा आमली, नमे जो दाड़म दाख ।
> एरंड विचारा क्या नमे, जिसकी ओछी साख ॥
> लघुता से प्रभुता बढ़े, प्रभुता से प्रभु दूर ।
> चींटी शक्कर खात है, कुञ्जर के मुख धूर ॥

जिस व्यक्ति में अहं अभिमान नहीं होता वही प्रभुत्व प्राप्त करता है। श्री बाहुबलीजी के अहंत्व पर चोट लगाने के लिए ब्राह्मी सुन्दरी के निम्न शब्द कितने सहायक बने।

> वीरा म्हारा गज थकी ऊतरो,
> गज चढ़ियां केवल न होसीजी ।
> वीरा म्हारा गज थकी ऊतरो ॥

वन में ध्यानस्थ बाहुबलीजी को जब ये शब्द कर्ण गोचर हुवे, तब उनका चिंतन चला कि आवाज तो ब्राह्मी सुन्दरी की प्रतीत होती है, तो क्या वे मुझे सम्बोधन कर कह रही है? क्या मैं हाथी पर सवार हूँ? चिंतन की धारा आगे बढ़ी, सोचा कि ये महासती है, ये असत्य का प्रयोग नहीं कर सकती, यदि इनका कथन सत्य है, तो मैं किस हाथी पर सवार हूं, जो मेरे

केवल ज्ञान में बाधक है। और वे इस निर्णय पर पहुंचे कि वास्तव में, मैं अभिमान के हाथी पर सवार हूँ कि यदि मैं प्रभु की सेवा में जाता हूँ तो मेरे छोटे भाई जिन्होंने मेरे से पूर्व प्रवर्ज्या अंगीकार की है उन्हें वंदना करनी पड़ेगी। मैं बड़ा हूँ क्या छोटे भाई को वंदना करूं। बस केवली होने के बाद ही वहां जाऊँगा तो वंदना नहीं करनी पडेगी। इस अभिमान के हाथी ने ही मेरे वीतराग भाव पर परदा डाल रखा है। बस अब मैं जाऊँ और उन्हें वंदन करूं। यह भाव आते ही वे केवली बन गए। देखिए-यह है नम्रता का फल।

विवेक

जैन धर्म में विवेक का बहुत महत्व है। विवेक धर्म का प्राण है। विवेक शून्य व्यक्ति को पशु के समान कहा है। न वह अहिंसा को पाल सकता है न सत्य की आराधना ही कर सकता है। भगवान महावीर ने आचारांग सूत्र में कहा है—"धर्म विवेक में है।" प्रत्येक कार्य विवेक और विचार पूर्वक करना चाहिए। विवेक पापसे बचने की महान कला है।

कहा भी है—जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए।
जयं भुज्जंतो भासतो पाव कम्मं न बंधइ॥ ,

सव्व भूयप्प भूयस्स सम्मं भूयाइ पासओ।
पिहिआसवस्स दंतस्स पाव कम्मं न बंधइ॥

सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझ कर इन्द्रियों को वश में करने वाला साधक आश्रव को रोक देता है। उसे पाप कर्म का बंध नहीं होता।

किसी भी कार्य में प्रमाद और असावधानी रखना अविवेक कहलाता है। विवेक रखने वाला व्यक्ति गृहस्थी के काम धंधों में भी विशेष हिंसा से बच सकता है और कभी २ तो हिंसा के

स्थान में अहिंसा का मार्ग भी खोज निकालता है। ऐसे ही विवेकी जीवन के विषय में भ. महावीर ने कहा है कि विवेकी साधक पाप के साधनों को भी धर्म के साधन बना सकता है और अविवेकी धर्म के साधनों को पाप के साधन।

"जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा।"

पानी का परेंडा, पानी के घड़े बहुत साफ और पवित्र रहने चाहिए। बिना छाना पानी कभी काम में नहीं लेना चाहिए। पानी छानकर जीवाणुओं को यों ही नहीं डाल कर जलाशय आदि स्थान में ही डालने का विवेक रखना चाहिए। पानी निकालने और पीने के बरतन अलग होने चाहिए। पीने के बरतन को घड़े में डालना अविवेक है। छानने का वस्त्र भी लोन का होना चाहिए। वह गंदा और फटा हुआ नहीं होना चाहिए। पानी के उपयोग में भी लापरवाही न हो। घर का कूड़ा-कचरा भी एकांत स्थान में यतना पूर्वक डालने का ध्यान रखना चाहिए। भोजन बनाने की सामग्री भी बहुत दिनों तक नहीं देखी जाए तो उसमें जीवोत्पत्ति की संभावना होती है। सड़ी हुई सागभाजी फलफूल में भी जीवोत्पत्ति होती है। लकड़ी कंडों को देखभाल कर उपयोग करना विवेक है। घी तेल पानी आदि के बरतन उघाड़े न रहे। अन्न की झूठन के पानी को मोरी में नहीं डालकर चाठिया में डालने का विवेक रहे। घर की सफाई में भी विवेक रहना आवश्यक है।

अतः खाने पीने बोलने चालने उठने बैठने कोई वस्तु उठाने रखने भोजन करने आदि सभी कार्य विवेक पूर्वक होने चाहिए जिससे सहज ही पाप कर्म बंध रुक जाता है। कहा है—
१. खाओ पीओ छको मत। २. बोलो चालो बको मत।

३. चलो फिरो थको मत ।   ४. करो घरो पको (बड़ाई करना) मत
५. देखो भालो तको मत ।

आंखां देखण को दई देखण में नहीं दोष ।
पण कणी नजर सूं देखणो ईरो रखणो होश ।।

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक कार्य में विवेक जागृत रहे। काश्तकारी में भी विवेक से काम लिया जाय। फसल आने पर अच्छे परिपक्व और सूखे हुवे स्वस्थ बीजों को गेमेक्सन पावडर के साथ मिलाकर अच्छे स्थान पर रखा जाय चारों ओर यही पावडर छिड़क दिया जाय। बोने के पूर्व एग्रोसन पावडर मिले पानी में डाल कर जो वीज नीचे वैठ जाय उन्हें साफ किए हुवे खेत में गेमेक्सन पावडर छिड़क कर बोया जाय और वाद में भी निंदाई के वाद इसी पावडर का छिड़काव किया जाय तो अधिक जीवोत्पत्ति नहीं होती। फसल भी स्वस्थ प्राप्त होती है। ऊनी सूती रेशमी वस्त्रों में डामर की गोली रखने से खराब नहीं होते तात्पर्य यह है कि विवेक से कर्म बंध नहीं होते और आत्मा हलुकर्मी बनकर अपने सिद्ध बुद्ध और मुक्ति के लक्ष्य को प्राप्त कर लेती है।

आचार बावनी

वर्द्धमान शासन धणी, गणधर लागुं पाँय ।
दया माता ने वीनवूं, वन्दु सीस नमाय । १।।
ठाणायंग में चालिया, श्रावक चार प्रकार ।
मात पिता सरीखा कह्या, साधाँ के हितकार ।।२।।
करड़ो काठी सीख दे, राखे दृढ़ व्रत धार ।
ढीला पड़वा दे नहीं, ते सुणजो अधिकार ।।३।।

ढाल

॥ अरज सुणो श्रावक तणी—अन्तरा ॥

जी स्वामी घर छोड़ीने निकल्या, थां तो लीधो संजमभारजी ।
पंच महाव्रत पालजो, मती लोपजो जिनजी री कारजी ॥अ. १॥
जी० तप जप संजम आदरो, निद्रा विकथा निवार जी स्वा. ।
बावीस परीसा जीतजो, संजम खांडारी धारजी ॥२॥
गृहस्थी सुं मोह मती राखजो, थें तो लीजो शुद्ध आहारजी ।
असूझतो आहार देखने, पाछा फरजाजो तिणवार ॥३॥
कोई वेरावे थाने लाड़वा, कोई दूरा ने खीरजी स्वा० ।
कोई देवे सूखा टूकड़ा, मती होजो थें दिलगीरजी ॥४॥
कोई करे थाने वन्दना, कोई नमावे सीसजी ।
कोई देवे थाने गालियां, मती आणजो राग ने रीसजी ॥५॥
छल छिद्र जोवो मती, कूड़ कपट न आणो लेस जी ।
क्रोध कषाय करजो मती; थाने खम्या करणी विशेषजी ॥६॥
जन्तर मन्तर करजो मती, मती कहेजो सुपन विचारजी ।
ज्योतिष निमित्त भाखो मती, यो तो साधु तणो आचारजी ॥
रंगया चंगा रहेणो नहीं, नहीं करणो देह श्रृङ्गारजी ।
वेश श्रृङ्गार वणावतां, मुख-धोवतां दोष अपारजी स्वा. ॥८॥
कपड़ा पेहरो उजला, भारी मोला चित्त चावजी ।
साधु दीसे सणगारिया, लोगा में निन्दा थायजी ॥९॥
वणिया वणाया विन्द ज्यूं गोरा फुटराने धूंधालजी ।
मेल उतारे शरीरनो, साधुजी ने लागे जंजालजी ॥१०॥
चौमासो करजो देखने, थानक निर्दोष विचारजी ।
नर-नारी रेवे जठे, नहीं साधु तणो आचारजी ॥११॥
संथारो करजो सोचने, तपस्या करजो विचारजी ।
पाछे मन डिग जावसी, तो हँसेगा नर-नारजी ॥१२॥

दोय साधु तीन आरजां, विचरजो सुखकारजी।
एक साधु दोय आरजां, मती करजो थें विहारजी ॥१३॥
मेघ मुनिवर मोटका, श्री धर्मरुचि अनगारजी।
सङ्कट में सेंठा रह्या, ज्यांरा आगम में अधिकार जी ॥१४॥
जो थांरे छांदे चालसो, तो लोपसो जिनजी री कारजी।
दुष्ट भाव लाया थकां, नहीं सरे गरज लगार जी ॥१५॥
वहेरण ने गया देखशो, थें नर नार्यां ना रूपजी।
साधुपणा थी चूकने, थें पड़सो भव ना कूपजी ॥१६॥
कंठ-कला घणी काढ़ ने, थें रिझावशो नर-नारजी।
वैराग्य भाव आण्या बिना, नहीं सरे गरज लगारजी ॥१७॥
पलेवण किया बिना, परभाते करणो विहारजी।
ऊनो आहार दोनु टंका, नहीं साधु तणो आचार जी ॥१८॥
गृहस्थ रे घरे नहीं बेसणो, कारण बिना कोई साध जी।
सावद्य भाषा नहीं बोलणी, संजम में लागे बाधजी ॥१९॥
मुंडा सुं वस्तु निषेध ने, मत करजो अंगीकार जी।
वमियारी वांछा कुण करे, काग कुत्ता रो आचार जी ॥२०॥
आप तणी प्रशंसा करे, पेला पर राखे द्वेष जी।
जा में साधपणो तो छे नहीं, थें आगम लेवो देखजी ॥२१॥
ओछी भाषा नहीं बोलणी, नहीं करणो तुच्छकारजी।
कठोर वचन बोलने, थे संजम जावोला हार जी ॥२२॥
उठंगण कारण बिना, देवे पूठ पाटिया पूरजी।
पूज्य कहीने पुजावसी, रहेसी मुक्ति मारग सुं दूरजी ॥२३॥
तिथि पर्वी तप नहीं करे, नहीं लोक तणी मुरजाद जी।
दोनु टंका उठे गोचरी, पड़िया जीभ तणा स्वाद जी ॥२४॥
ताक ताक जावे गोचरी, लावे ताजा माल जी।
अरस पर अरति धरे, जांरो वण रयो कुन्दो लालजी ॥२५॥
एक घरे दोनु टंका, नित लावे लगावण आहार जी।

नितपिण्ड आहार लेवताँ, थाने लागे तीजो अनाचार जी ॥२६॥
ऊँचे डोरे मुंहपती, पलेवण भी नहीं ठीक जी ।
सांझ सवेरे सुई रहे, ये किण विध माने सीख जी ॥२७॥
गच्छवासी सुं परचो घणो, आवण ने जावण होय ।
लेणो देणो सट्टोपटो, साधु ने करणो नहीं कोय जी ॥२८॥
मुंडा सुं बोली ने फरे, दूजो महाव्रत देवे खोय जी ।
सांचा ने झूठो करे, सांग साधुरो होयजी ॥२९॥
दोष लागे छे सामटो श्रावक पण साखी होयजी ।
प्रायश्चित्त लेवे नहीं, जांरे परभव डर नहीं होयजी ॥३०॥
खाई पीवी ने सूई रहे, बेठा पडिक्कमणो ठायजी ।
वस्त्र पात्र राखे घणा, ते तो पासत्था कहेवाय जी ॥३१॥
नारी आवे एकली, अक्षर पद सीखण काजजी ।
वहेली आवे रातरी, मतीं सीखावजो मुनिराजजी ॥३२॥
सावद्य भाषा नी चोपियां, मेलो भरण ने लोक जी ।
पेड़ी जमावे आपणी, वैराग्य बिना सब फोक जी ॥३३॥
श्रावक मात-पिता जिसा, वी सीख देवे भली रीत जी ।
ज्यांने काँटा खीला सरीखा गिने, करे फर-फर ने फजीतजी ॥३४॥
चवदे चूका बारे भूला, नहीं जाने नव का नामजी ;
गाम ढंढेरो फेरावियो, श्रावक म्हारो नामजी ॥३५॥
एहवा श्रावक मती जाण जो, श्रावक होवे व्रत धार जी ।
कष्ट पड्यां कायम रहे, जो पडिमा पालणहार जी ॥३६॥
ऊँचा चढ़ीने मालिये, मती जोवजो नर-नारजी ।
मन बश जो नहीं राखसो, तो जासो जमारो हारजी ॥३७॥
चित्राम राखो वैराग्यना, तो पण आपरो छंद जी ।
परपंच सघला छोड़ने, राखो संजम सुं संबंध जी ॥३८॥
दुखमी आरो पाँचमो, निन्दाकारी लोग जी ।
ओगुणवाद बोले घणा, थें तो शुद्ध पालजो जोग जी ॥३९॥

आचारांग में चालियो, साधु तणो आचार जी ।
तिण अनुसारे पालसो, तो होशी खेवो पार जी ॥४०॥
इर्या भाषा, एषणा, ओलखणो आचार जी ।
गुणवंत साधु साधवी, जाने वन्दु वारवार जी ॥४१॥
आप थापी पर निन्दका, जामे हो तेरा दोष जी ।
दूजे संवर देखलो, थें किण विध जासो मोक्ष जी ॥४२॥
साधुजी में गुण अति घणा, मोसु कह्या नहीं जाय जी ।
सेंठा रे मन भावसी, ढीला तो निन्दक थाय जी ॥४३॥
किणरी थापना निषेधना, मत करजो ताणाताण जी ।
साध आचार ने पालजो, तो थाशे निरवाण जी ॥४४॥

दोहा

मुनिवर उठिया गोचरी, इर्या सुमति विचार ।
वैश्यानो पाड़ो वर्जी, फिरजो नगर मझार ॥१॥

ढाल

जी स्वामीकिण कारणने वरजियो. थें सांभलजो अधिकारज
शङ्का उपजे चित्त में; चारित्र नी होवे छार जी ॥४५॥
मानोपेत वस्त्र धारजो, रंग विरंगा सु मन फेर जी ।
शङ्का होवे तो देख लो, आचारंग में नहीं देर जी ॥४६॥
आंधी, काणी ने कूबड़ी, वली टूंटी तिरिया जाण जी ।
तिण कने ऊभा रीजो मती, थाने छे जिनवर नी आणजी ॥
नगर में जावो गोचरी, एक रीत सु आहार जी ।
आछा-आछा घर ताकियां, थाने लागे दोष अपार जी ॥४८॥
उतावला चालो मती, मती करता जाजो बात जी ।
हँसता पण हालो मती, संजम ने राखो साथ जी ॥४९॥
"आचार बावनी" सुणीकरी, थें हिरदे लीजो धार जी ।

म्हें सूत्र सिद्धांत वांचा नहीं, सुण कर कीनो उपाय जी ॥५०॥
ओछो अधिको जो हुवे, तो लीजो आप सुधार जी।
जिनजी रा वचन आराधशो, तो करशो खेवो पार ॥५१॥
संवत अठारा छत्तीस में, दक्षिण देश मुझार जी।
जोड़ी मोतीचन्द जुगत सु सांभलजो नरनार जी।
स्वामी अर्ज सुनो श्रावक तणी ॥५२॥

उपसंहार

देश मिले, वेष मिले, मिले खान और पान।
एक प्रकृति ना मिले, उसकी खेंचा तान॥

साधु-साध्वियों! श्रावक-श्रावकिओं! यदि इस संसार चक्र के दुःखों से कुछ भी मुक्ति पाने की लालसा है तो अपनी प्रकृति को थोड़ा मोड़ देना सीख लो। यदि जरासा भी जिद्दी प्रकृति को छोड़ना प्रारम्भ कर दिया तो इस लोक एवं पर भव लोक को सुधारते हुए एक दिन मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त कर लोगे।

स्वाध्यायियों? अभयदान से किसी जीव को कुछ समय (वर्ष) के लिये छुड़ाया (बचाया) जा सकता है, परन्तु आपके (सदवाचन) सदुपदेश से यदि एक भी जीव मित्थ्यात्व से सम्यक्त्व की ओर गति कर गया तो आप उसके अनंतानंत संसार सागर को कम करने में सहायक वन जाते हो अस्तु स्वयं स्वाध्याय करे, अन्य को प्रेरित करे व स्वाध्याय करने वालों का भिकरण त्रियोग से समर्थन कर महान् अभयदान का कार्य करें।

चतुर्विध संघ से---

जो कामनाओं के वशीभूत वनेंगे वे प्रत्येक पद-पद पर संक्लेशित होंगे अस्तु कामनाओं-इच्छाओं पर विजय प्राप्त करें। विदेशी विद्वान् हमारे साहित्य पर शोध, विश्लेषण, अनुसंधान एवं टीकाएँ लिखे और हमारे युवा तथा प्रबुद्ध वर्ग इसे अथाह ज्ञान-समुद्र से उपेक्षित रहे यह बिडम्बना है।

सूर्योदय सूर्यास्त का समय विभिन्न स्थानों पर

प्रत्येक क्षेत्र में सूर्यौदय के समय में ४८ मिनिट मिलाने पर जो समय होता है वह समय नवकारसी का समझना। सूर्योदय सूर्यास्त के समय का चौथाई समय पोरसी का, आधा समय दो प्रहर, पौन समय तीन प्रहर का समझना।

माह	बीकानेर		अहमदाबाद		उदयपुर	
जनवरी १	७-२८	५-५२	७-२२	६-०५	७-२०	५-५३
जनवगी १५	७-३१	६-०१	७-२५	६-१४	७-२३	६-०६
फरवरी १	७-२६	६-१५	७-२१	६-२७	७-१८	६-१८
फरवरी १५	७-१७	६-२५	७-१४	७-३५	७-११	६-२७
मार्च १	७-०५	६-३३	७-०४	६-४२	६-५९	६-३६
मार्च १५	६-५१	६-४१	६-५१	६-४८	६-४६	६-४३
अप्रेल १	६-३३	६-५०	६-३४	६-५४	६-२८	५-५१
अप्रेल १५	६-१९	६-५६	६-२१	७-००	६-१६	६-५६
मई १	६-०४	७-०५	६-०८	७-०६	६-०१	७-०४
मई १५	५-५५	७-१२	६-००	७-१२	५-५२	७-१२
जून १	५-४९	७-२०	५-५५	७-२०	५-४६	७-१९
जून १५	५-४८	७-२६	५-५४	७-२६	५-४३	७-२६
जुनाई १	५-५१	७-२९	५-५८	७-२९	५-४९	७-२८
जुलाई १५	५-५८	७-२७	६-०३	७-२७	५-५५	७-२६
अगस्त १	६-०५	७-२१	६-११	७-२१	६-०३	७-१९
अगस्त १५	६-१३	७-११	६-१६	७-१२	६-१०	७-०९
सितंबर १	६-१९	६-५४	६-२३	६-५७	६-१७	६-५३
मितंबर १५	६-२४	६-४०	६-२७	६-४३	६-२२	६-३८
अक्टोबर १	६-३३	६-२२	६-३३	६-२७	६-२९	६-२१
अक्टोबर १५	६-४०	६-०७	६-३७	६-१५	६-३३	६-०७
नवंबर १	६-४९	५-५३	६-४५	६-०१	६-४३	५-५४
नवंबर १५	७-००	५-४४	६-५५	५-५५	६-५२	५-४६
दिसंबर १	७-११	५-४२	७-०५	५-५२	७-०४	५-४४
दिसंबर १५	७-२१	५-४३	७-१४	५-५६	७-१३	५-४७

सूर्योदय सूर्यास्त का समय विभिन्न स्थानों पर

प्रत्येक क्षेत्र में सूर्योदय के समय में ४८ मिनिट मिलाने पर जो समय होता है वह समय नवकारसी का समझना। सूर्योदय सूर्यास्त के समय का चौथाई समय पोरसी का, आधा समय दो प्रहर, पौन समय तीन प्रहर का समझना।

माह		रतलाम		दिल्ली		बम्बई	
जनवरी	१	७-१५	५-५२	७-१४	५-३५	७-१२	६-१२
जनवरी	१५	७-१७	६-०३	७-१६	५-४५	७-१५	६-२१
फ़रवरी	१	७-१४	६-१३	७-१०	५-५९	७-१३	६-३१
फरवरी	१५	७-०६	६-२२	७-०१	६-१०	७-०८	६-३८
मार्च	१	६-५५	६-३०	६-४७	६-२१	६-५८	६-४४
मार्च	१५	६-३५	६-३७	६-३२	६-२९	६-४८	६-४८
अप्रेल	१	६-२५	६-४३	६-१२	६-३९	६-३३	६-५२
अप्रेल	१५	६-१५	६-४८	५-५६	६-४७	६-२२	६-५६
मई	१	६-००	६-५४	५-४१	६-५६	६-११	७-०२
मई	१५	५-५२	७-००	५-३१	७-०४	६-०५	७-०६
जून	१	५-४७	७-०८	५-२४	७-१४	६-०१	७-१२
जून	१५	५-४८	७-१५	५-२३	७-२०	६-०१	७-१७
जुलाई	१	५-५१	७-१७	५-२७	७-२३	६-०५	७-२०
जुलाई	१५	५-५६	७-१५	५-३३	७-२१	६-१०	७-१९
अगस्त	१	६-०३	७-१०	५-४३	७-१२	६-१६	७-१४
अगस्त	१५	६-१०	७-००	५-५०	७-०१	६-२०	७-०६
सितंबर	१	६-१५	६-४५	५-५९	६-४३	६-२४	६-५३
सितंबर	१५	६-२०	६-३०	६-०६	६-२६	६-२६	६-४१
अक्टोबर	१	६-२५	६-१५	६-१४	६-०७	६-२९	६-२७
अक्टोबर	१५	६-३०	६-०२	६-२२	५-५२	६-३३	६-१६
नववर	१	६-३८	५-४८	६-३३	५-३६	६-३९	६-०५
नवंबर	१५	६-४६	५-४३	६-४४	५-२७	६-४६	६-००
दिसंबर	१	६-५८	५-४१	६-५७	५-२४	६-५६	६-००
दिसंबर	१५	७-०५	५-४५	७-०७	५-२६	७-०४	६-०४

सूर्योदय सूर्यास्त का समय विभिन्न स्थानों पर

प्रत्येक क्षेत्र में सूर्योदय के समय में ४८ मिनिट मिलाने पर जो समय होता है वह समय नवकारसी का समझना । सूर्योदय सूर्यास्त के समय का चौथाई समय पोरसी का, आधा समय दो प्रहर, पौन समय तीन प्रहर का समझना ।

माह		दुर्ग		मद्रास		कलकत्ता	
जनवरी	१	६-४७	५-३४	६-३१	५-५३	६-१७	५-०३
जनवरी	१५	६-४९	५-४२	६-३५	६-०१	६-१९	५-१२
फरवरी	१	६-४६	५-५४	६-३६	६-०९	६-१६	५-२४
फरवरी	१५	६-३८	६-०४	६-३२	६-१४	६-०९	५-३२
मार्च	१	६-३०	६-१०	६-२५	६-१८	५-५८	५-४०
मार्च	१५	६-१९	६-१३	६-१७	६-१९	५-४६	५-४६
अप्रेल	१	६-०२	६-१९	५-०६	६-२१	५-३०	५-५२
अप्रेल	१५	५-४७	६-२३	५-५७	६-२२	५-१७	५-५७
मई	१	५-३८	६-३९	५-४९	६-२४	५-०४	६-०३
मई	१५	५-३०	६-३५	५-४४	६-२७	४-५७	६-०९
जून	१	५-२५	६-४२	५-४२	६-३२	४-५२	६-१७
जून	१५	५-२२	६-४६	५-४३	६-३३	४-५२	६-२२
जुलाई	१	५-२६	६-४९	५-४६	६-३९	४-५५	६-२५
जुलाई	१५	५-३२	६-४८	५-५०	६-३९	५-०१	६-२४
अगस्त	१	५-३९	६-४३	५-५५	६-३६	५-०८	६-१७
अगस्त	१५	५-४४	६-३४	५-५७	६-३०	५-१३	६-०८
सितंबर	१	५-२०	६-२०	५-५८	६-२०	५-१९	५-५४
सितंबर	१५	५-५५	६-०७	५-५८	६-१०	५-२३	५-४०
अक्टोबर	१	६-००	६-५१	५-५९	५-५९	५-२८	५-२४
अक्टोबर	१५	६-०४	५-४०	५-५९	५-५०	५-३३	५-१२
नवंबर	१	६-१२	५-२९	६-०३	५-४२	५-४२	४-५९
नवंबर	१५	६-१८	५-२५	६-०८	५-३९	५-४९	४-५३
दिसंबर	१	६-२९	५-२३	६-१६	५-४०	६-००	४-५१
दिसंबर	१५	६-३७	५-२६	६-२३	५-४५	६-०९	४-५४

अन्तराष्ट्रीय समय चक्र

ग्रीन विच स्टेण्डर्ड समय १२-००

लन्दन	१२-००	कैरो	१४-००	होवर्ट	२२-००
मदेरिया	१२-००	केप टाउन	१४-००	ब्रिसवेन	२२-००
मेड्रिड	१३-००	हेलिंसकी	१४-००	मेलबोर्न	२२-००
माल्टा	१३-००	इस्तंबुल	१४-००	सिडनी	२२-००
जिब्राल्टर	१३-००	जेरुसलम	१४-००	आकलेंड NZ	२३-००
कोपेन हाजन	१३-००	मास्को	१५-००	वानकोवर	०४-००
ब्रुशेल्स	१३-००	नैरोब्री	१५-००	सनफ्रेंसिस्को	०४-००
वुडापेस्ट	१३-००	तेहरान	१५-३०	चिकागो	०६-००
बेलग्रेड	१३-००	मोरीटियस	१६-००	विन्नीपेग	०६-००
र्बलिन	१३-००	बम्बई	१७-३०	टोरेंटो	०७-००
आमस्टर्डम	१३-००	कलकत्ता	१७-३०	क्यूवेक	०७-००
ओसलो	१३-००	रंगून	१८-३०	पनामा	०७-००
पेरिस	१३-००	सिंगापूर	१९-३०	ओटावा	०७-००
प्राग	१३-००	पेकिंग	२०-००	न्यूयार्क	०७-००
रोम	१३-००	पेर्थ W.A.	२०-००	मोन्टेरियल	०७-००
स्टाकहोम	१३-००	होंगकोंग	२०-००	बकनोसअेर्स	०९-००
वियना	१३-००	टोकियो	२१-००	रीओडंजेनैरो	०९-००
अंकारा	१४-००	याकोहामा	२१-००	सेन्टजोंस NF	०८-३०
ऐथेंस	१४-००	आदेलेंड	२१-००		

चौतीस अस्वाध्याय

(आकाश सम्वन्धी १०)

१ बड़ा तारा टूटे तो १ प्रहर
२ सूर्योदय सूर्यास्त के समय
लाल दिशा-जब तक रहे
३ अकाल में मेघ गर्जे तो २ प्रहर
४ „ विजली चमके तो
१ प्रहर
५ „ „ कड़के तो
२ प्रहर
(स्वाति से आद्रा नक्षत्र तक)
(दि.२२-१० से २२-६ तक)
६ शुक्ल पक्षीय १-२-३ प्रहर रात्रि
७ यक्ष का चिन्ह दिखे जब तक रहे
८/९ काली सफेद धूंवर „
१० धूल छाये „

(औदारिक सम्बन्धी १०)

११ से १३ हड्डी, रक्त मांस तिर्यंच
के ६० हाथ, मनुष्य के
१०० हाथ
१४ अशुचि की दुर्गन्ध आवे दिखे
१५ श्मशान भूमि १०० हाथ
१६ चन्द्रग्रहण खण्ड ८ प्रहर
पूर्ण १२ प्रहर
१७ सूर्यग्रहण खण्ड १२ प्रहर
„ पूर्ण १६ प्रहर
१८ राजमृत्यु नया राजा नवैठे
तव तक
१९ युद्ध स्थल के निकट
युद्ध चले जव तक
२० पंचेन्द्रिय कलेवर रहे
तव तक

(काल सम्वंधी १४)

२१ से ३० निम्न पूर्णिमा
और उसके बाद की एकम
अषाढ़, भादवा, आसोज
कार्तिक, चैत्र।
३१ से ३४ प्रातः मध्याह्न
संध्या, अर्व रात्रि को
एक-एक मुहूर्त तक
इन समयों को टालकर
शास्त्र की स्वाध्याय करना
चाहिए खुले मुंह न वोलें,
सामायिक में शास्त्र दीपक
के प्रकाश में न पढ़ें।

जैन धर्म का प्राचीन इतिहास एवं गुर्वावली

अनंत करुणासागर सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनेश्वर देव जगदुद्धार निमित्त जो मार्ग दर्शाते हैं, और जो जो आज्ञाएं फरमाते हैं उन्हें धर्म और शासन की संज्ञा दी जाती है।

ऐसे जिनेश्वर देव पंच महाविदेह क्षेत्र में सर्वदा विद्यमान रहते हैं, परन्तु भरत ऐरावत क्षेत्र में ऐसा नहीं होता। यहां नियमित रूप से परिवर्तित होते हुए काल चक्र में धर्म अधर्म सुख दुःख आदि का भी परिवर्तन होता रहता है, न्यूनाधिक होते रहते हैं।

बीस क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम प्रमाण समय के एक काल चक्र में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नामक दो काल विभाग हैं। प्रत्येक सर्पिणी के छः छः आरे होते हैं। इन छः आरों में से तीसरे एवं चौथे आरे में तीर्थंकरों का अस्तित्व रहता है। प्रत्येक सर्पिणी में चौबीस चौबीस तीर्थंकर होते हैं। ऐसे अनंत काल चक्र व्यतीत होगए और अनंत तीर्थंकर प्रवर्तमान होकर मोक्ष पधार गये।

भरत क्षेत्र के इस अवसर्पिणी काल का "सुखम सुखम" नामक प्रथम आरा, "सुखम" नामक द्वितीय आरा "सुखम दुःखम" नामक तृतीय आरे का अधिकांश समय व्यतीत हो जाने के बाद भोगभूमि में अव्यवस्थाएं उत्पन्न होने लगी। काल के प्रभाव से उत्पन्न समस्याओं का समाधान कुलकरों के द्वारा होता था। अन्तिम अर्थात् पंद्रहवें कुलकर श्री नाभिराजा की पत्नी मरूदेवी की कुक्षि से प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव का जन्म हुवा।

उन्होंने समय पाकर कर्म भूमि से सम्बन्धित असि मसि एवं कृषि आदि व्यवहार एवं पुरुषोचित ७२ तथा स्त्रियोचित ६४ कला आदि की शिक्षा से मानव समूह को व्यवस्थित कर

श्रमरूप लौकिक कल्पवृक्ष का उपयोग सिखाया और अपनी पिछली उम्रमें साधना रूप लोकोत्तर कल्प वृक्ष का ज्ञान दिया। और तीसरे आरे के ८६ पक्ष शेष रहने पर वे निर्वाण को प्राप्त हुए। पचास लाख क्रोड सागर अर्थात् चतुर्थ आरे के आधे समय तक उनका धर्म शासन प्रवर्तमान रहा। शेष चौथे आरे में शेष तेवीस तीर्थंकर हुवे। इनमें चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी का धर्म शासन वर्तमान में प्रचलित है।

भगवान महावीर स्वामी का जन्म क्षत्रिय कुंड नगर के क्षत्रिय कुल भूषण ज्ञात वंशीय काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थ राजा की रत्न कुक्ष धारिणी महारानी त्रिशला देवी की कुक्षि से विक्रम पूर्व ५४२ शुभ मिती चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सोमवार ईस्वी पूर्व ५९८ दि. २७ फरवरी को हुवा। विपुल वैभव का परित्याग कर विक्रम पूर्व ५१२ मार्गशीर्ष कृष्णा दसमी ईस्वी पूर्व ५६९ को प्रवर्ज्या अंगीकार की। विक्रम पूर्व ५००, वैशाख शुक्ला दसमी ईस्वी पूर्व ५५७ को उन्हें कैवल्य ज्ञान प्राप्त हुवा। एवं विक्रम पूर्व ४७० कार्तिक कृष्णा अमावस्या सोमवार ईस्वी पूर्व ५२७ दि. १३ सितम्बर को उन्हें निर्वाण लाभ हुवा।

भगवान महावीर के ११ गणधर एवं ९ गण थे। भगवान के निर्वाण के पूर्व ही नव गणधर अपने शिष्य समुदाय को श्री सुधर्मा स्वामी को सौंपकर निर्वाण पधार गए। भगवान के निर्वाण के वाद ही श्री इन्द्रभूतिजी केवल ज्ञानी वने। अतः भ. महावीर की व्यवस्थानुसार श्री सुधर्मा स्वामी ही चरम तीर्थंकर की परंपरा में प्रथम आचार्य अर्थात् युग प्रधान-पुरुष हुए। वीर निर्वाण के वारह वर्ष वाद श्री इन्द्रभूतिजी को निर्वाण एवं श्री सुधर्मा स्वामी को केवल ज्ञान प्राप्त हुवा। वी. सं. २० में श्री सुधर्मा स्वामी को निर्वाण हुवा एवं श्री जम्बूस्वामी आचार्य पद प्राप्त कर उसी वर्ष केवली वने।

क्रम	नाम	गृहवास	सामान्य साधु	आचार्य पद	पूर्णायु	स्वर्ग वी.नि.सं.
	श्री गौतम स्वामी	५०	३०	१२	९२	१२
१	,, सुधर्मा स्वामी	५०	४२	८	१००	२०
२	,, जम्बू स्वामी	१६	२०	४४	८०	६४
३	,, प्रभव स्वामी	३०	४४	११	८५	७५
४	,, सय्यंभवजी	२८	११	२३	६२	९८
५	,, यशोभद्रजी	२२	१४	५०	८६	१४८
६	,, संभूतिविजयजी	४२	४०	८	९०	१५६
७	,, भद्रबाहूजी	४५	१७	१४	७६	१७०
८	,, स्थूलिभद्रजी	३०	२४	४५	९९	२१५
९	,, आर्य महागिरिजी	३०	४०	३०	१००	२४५
१०	,, बलसिंहजी(बलिस्सह)	३१	३०	३५	९६	२८०
११	,, सोहन स्वामी (स्वाति. सुहस्तीजी)	२२	३६	५२	११०	३३२
१२	,, श्यामाचार्यजी (विरससिंह-इन्द्रदिन्न)	३३	४८	४४	१२५	३७६
१३	,, षांडिलाचार्यजी (आर्यदिन्न)	५०	२२	३३	१०५	४०९
१४	,, जीतधरजी (मंगू)	९	१८	४५	७२	४५४
१५	,, आर्य समुद्रजी	१६	२७	५४	९७	५०८
१६	,, नंदिलजी (वयर स्वामी)	९	३	८३	९५	५९१
१७	,, नागहस्तीजी (वज्रसेन)	१०	१६	९३	११९	६८४
१८	,, रेवंतगिरिजी	४१	१८	३४	९३	७१८

क्रम	नाम	गृहवास	सामान्य साधु	आचार्य पद	पूर्णायु	स्वर्ग. वी.नि.सं.
१९	श्री सिंहगिरिजी	२५	१५	६२	१०२	७८०
२०	,, स्थंडिलजी	१२	२७	३४	७३	८१४
२१	,, हिमवंतजी	४१	८	३४	८३	८४८
२२	,, नागार्जुनजी	१९	२५	२७	७१	८७५
२३	,, गोविंदाचार्यजी	३१	१७	१२	६०	८८७
२४	,, भूतदिन्नजी	३८	१९	२७	८४	९१४
२५	,, लोहगणिजी (छोहगणि)	२४	५२	२८	१०४	९४२
२६	,, दूष्यसेनजी (दूसगणि)	४५	२४	३३	१०२	९७५
२७	,, देवर्द्धिगणिजी	१६	५२	३४	१०२	१००९

वल्लहिपुरम्मि नयरे, देवड्ढिपमुहेण समणसंघेण ।
पुत्थे आगम लिहिया, नवसयअसीयाउ वीराऊ ॥

क्रम	नाम	गृहवास	सामान्य साधु	आचार्य पद	पूर्णायु	स्वर्ग. वी.नि.सं.
२८	श्री वीरभद्रजी	२७	२३	५५	१०५	१०६४
२९	,, शंकरभद्रजी (शंकरसेन)	२२	२३	३०	७५	१०९४
३०	,, यशोभद्रजी	२७	२३	२२	७२	१११६
३१	,, वीरसेनजी	३५	४१	१६	९२	११३२
३२	,, वीरसंग्रामजी (वीरयश)	१५	१४	१७	४६	११४९
३३	,, जिनसेनजी	३५	१४	१८	६७	११६७
३४	,, हरिसेणजी	३८	२७	३०	९५	११९७
३५	,, जयसेनजी	३२	२३	२६	८१	१२२३
३६	,, जगमालजी	२७	९	६	४२	१२२९

३७	देवऋषिजी	४१	३६	५	८४	१२३४
३८	श्री भीमऋषिजी	५१	२३	२६	१०३	१२६३
३६	,, कर्मऋषिजी (किशनरिख)	२४	३१	२१	७६	१२८४
४०	,, राजऋषिजी	१६	२३	१५	५७	१२६६
४१	,, देवसेनजी	५८	२४	२५	१०७	१३२४
४२	,, शंकरसेनजी	४५	४०	३०	११५	१३५४
४३	,, लक्ष्मीलाभजी (लक्ष्मीवल्लभ)	२६	३३	१७	७६	१३७१
४४	,, रामऋषिजी	३४	३३	३१	६८	१४०२
४५	,, पद्मसूरजी (पद्मनाम)	३०	३३	३२	६५	१४३४
४६	,, हरिषेणजी (द्वि.) (हरिशरम)	२१	४३	२७	६१	१४६१
४७	,, कुशलदत्तजी (कलशप्रभ)	६६	२६	१३	१०५	१४७४
४८	,, उवनीऋषिजी					
४६	,, जयसेनजी (द्वि.)					
५०	,, विजयऋषिजी					
५१	,, देवऋषिजी					
५२	,, सूरसेनजी					
५३	,, महासूरसेनजी					
५४	,, महासेनजी					
५५	,, जयराजऋषिजी (जीवराज)					
५६	,, गजसेनजी					
५७	,, मिश्रसेनजी (मंत्रसेन)					

५८	,,	विजयसिंहजी					१८७१
५९	,,	शिवराजऋषिजी					१८९७
६०	,,	लालजी स्वामी					१९४१
६१	,,	ज्ञानऋषिजी					१९७१
६२	,,	भानूऋषिजी (नानगजी)					२००१
६३	,,	रूपऋषिजी					
६४	,,	जीवराजजी					
६५	,,	तेजराजजी					
६६	,,	कुंवरजी					
६७	,,	हर्षऋषिजी (हरजी)					
६८	,,	गोधाजी (गुलाबचन्द)					
६९	,,	परसरामजी					
७०	,,	लोकपालजी (लोकमण)					
७१	,,	महारामजी					
७२	,,	दौलतरामजी					
७३	,,	लालचन्दजी					
७४	,,	हुक्मीचन्दजी					२३८७
७५	,,	शिवलालजी					२४०३
७६	,,	उदयसागरजी	२२	३५	२१	७८	२४२४
७७	,,	चौथमलजी	२७	१५	३	४५	२४२७
७८	,,	श्रीलालजी	१९	१२	२०	५१	२४४७
७९	,,	जवाहरलालजी	१५	३०	२३	६८	२४७०
८०	,,	गणेशीलालजी	१६	३७	१९	७२	२४८९
८१	,,	नानालालजी	१९	२३			

विशेष उल्लेखनीय प्रसंग

❋ प्रभु महावीर के समय और बाद में निम्न निन्हव हुए

१ श्री जमाली	१६ वर्ष पूर्व	२ तिष्यगुप्त	१४ वर्ष पूर्व
३ आषाढ़ चार्य	२१४ वर्ष बाद	४ अश्वमित्र	२२० वर्ष बाद
५ गंग	२२८ ,,	६ रोहगुप्त	५४४ ,,
७ गोष्ठामाहिल	५८४ ,,	८ शिवभूति	६०६ ,,

❋ प्रभु महावीर के बाद निम्न शास्त्रीय वाचनाएं हुई

	वी. नि. सं.	कहां	किसके नेतृत्व में
१.	१६०	पाटली पुत्र	स्थूलिभद्र
२.	४००	मथुरा	षांडिलाचार्य
३.	८००	,,	नानार्जुनाचार्य
४.	६८०	वल्लभी	देवर्द्धिगणि (लिपिबद्ध किए गए)

प्रकाशन—१ आगमोदय समिति सूरत द्वारा सटीक।

२४४२ २ हैद्राबाद में श्री अमोलकऋषिजी द्वारा।

३ लुधियाना में उपाध्याय श्री आत्मारामजी द्वारा।

२४७४ ४ राजकोट में श्री घासीलालजी म. द्वारा।

२४८० ५ गुडगांव में श्री फूलचंदजी म. द्वारा।

२५०६ ६ ब्यावर में श्री मिश्रीमलजी म. (मधुकर) द्वारा।

❋ वीर प्रभु के बाद १ श्री सुधर्मास्वामी २ श्री जंबूस्वामी सिद्ध हुए।

❋ श्री जंबूस्वामी के सिद्ध होने पर निम्न १० बोल विच्छिन्न हुए। १ परमावधि ज्ञान २ मनः पर्यव ज्ञान ३ केवल ज्ञान ४ पुलाक-लब्धि ५ अहारक लब्धि ६ क्षायक सम्यक्त्व ७ जिनकल्प ८ परिहार विशुद्ध ९ सूक्ष्मसंपराय १० यथाख्यात चारित्र।

❋ वीर प्रभु के बाद सं. ६४ से १७० तक श्रुत केवली काल रहा।

❋ वी.नि.७० में श्री रत्नप्रभसूरिने ओसवाल वंश की उत्पत्ति की।

❋ वी.नि.४७० में श्री सिद्धसेन दिवाकर ने विक्रमादित्य आदि १८ राजाओं को जैन बनाया। विक्रम संवत् प्रारंभ हुवा

* वी.नि.६०५ में शालिवाहन राजा ने शक संवत् चलाया।
,, ६०९ में शिवभूति ने दिगम्वर मत चलाया।
,, ६७० में सांचोर में सर्व प्रथम वीर प्रतिमा स्थापित हुई
,, ७८४ में मल्लवादी आचार्य ने वौद्धों को पराजित किया
,, ८८२ में चैत्यवास प्रारंभ हुवा।
,, ९८० में शास्त्र लिपिवद्ध किए गए।
,, ९१८ में श्री रतनगुरु ने काष्ठ की प्रतिमा स्थापी।
,, ९६७ में पाषाण एवं धातु की प्रतिमा स्थापित हुई।
,, ९९२ में विद्या मंत्र लब्धियां विच्छिन्न हुई।
,, ९९३ में कालकाचार्य ने चौथ की संवत्सरी स्थापी।
,, १००८ में चैत्यवासियों ने पौषधशाला में वास किया।
,, १००९ में समस्त पूर्वों का ज्ञान विछिन्न हुवा।
,, ११७० में शीलंकाचार्य ने ११ अंग पर टीकाएं लिखी।
,, १२०० में स्वाति आचार्य ने चौदस की पक्खी स्थापी।
,, १२७० में शत्रुंजय तीर्थ का निर्माण हुवा।
,, १४६४ में उद्योतनसूरि एवं देवसूरि ने वड़गच्छ चलाया।
,, १६०५ में अभयदेवसूरि ने नवांगी टीकाएं लिखी।
,, १६१५ में कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य का जन्म।
,, १६२९ में चंद्रप्रभसूरि ने पूनमिया मत चलाया।
,, १६५४ में आर्य रक्षितसूरि ने अचलगच्छ की स्थापना की
,, १६७० में जिनदत्तसूरि ने खरतरगच्छ की स्थापना की।
,, १७२० में आगमिया गच्छ निकला।
,, १७५५ में जगच्चन्द्रसूरि ने तपगच्छ की स्थापना की।
,, १७५८ में वस्तुपाल तेजपाल ने आवू पर मंदिर वनवाए।
,, १९५२ में लोंकाशाह का जन्म।
,, २००१ में लोंकाशाह ने शुद्ध धर्म का प्रतिपादन किया।
,, २०४२ में पार्श्वचन्द्र गच्छ निकला।
,, २४८५ में तेरहपंथ मत की स्थापना भिक्खूजी ने की।
,, २४८९ में श्री गणेशाचार्य ने क्राँति का शंखनाद किया।
,, २४९० में श्री नानेशाचार्य ने धर्मपाल उद्धार किया।

समता मंच, रायपुर

माह सन्

श्रावक वर्ग दैनंदिन चार्ट	१	२	३	४	५	६	७	८
ध्यान, चिंतन, मनन, राईसी प्रतिक्रमण								
प्रार्थना, प्रत्याख्यान स्वाध्याय, वंदन								
नमन, जयजिनेन्द्र								
प्रवचन श्रवण								
मौन साधन								
विशेषतप								
सामायिक								
८. नया ज्ञान लेखन								
देवसी प्रतिक्रमण								
१०. प्रश्नोत्तर, धर्म चर्चा								
११. रात्रि भोजन त्याग								
१२. ध्यान सागारी संथारा								
१३. अन्तरावलोकन								
१४. कषायवर्जन								
१५. निंदा विकथा वर्जन								
६. अनर्थ दण्ड वर्जन								
विनय, विवेक, आज्ञापालन, सादगी								
हस्ताक्षर								